

डायमंड शाश्वत कथा माला

महाभारत के अमर पात्र

कुन्ती

उपन्यास



डॉ. विनय

महाभारत के अमर पात्र

कर्तव्यनिष्ठ कुन्ती



डायमंड बुक्स

eISBN: 978-93-5278-581-0

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक: डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II

नई दिल्ली-110020

फोन: 011-40712100, 41611861

फैक्स: 011-41611866

ई-मेल: ebooks@dpb.in

वेबसाइट: www.diamondbook.in

संस्करण: 2017

कर्तव्यनिष्ठ कुन्ती

लेखक: डॉ. विनय

भूमिका

महाभारत भारतीय संस्कृति का अन्यतम ग्रंथ है। इसे पांचवां वेद कहा गया है। अनेक भारतीय-पाश्चात्य विद्वानों ने इसे महाकाव्य मानकर संस्कृति, दर्शन तत्त्व, चिंतन, भक्ति की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का मूल स्रोत माना है। स्वयं महाभारत में कहा गया है कि –

धर्मे चार्थे चकामे च मोक्षे च भरतर्षम।
यदि हास्ति तदन्यत्र यन्ने हास्ति न तत्क्वचित्॥

म. 1/62/53

[“हे भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संदर्भ में जो कुछ इस ग्रंथ में है, वही और स्थानों पर है और जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।”]

और यह स्वयं सिद्ध है कि इतने महान ग्रंथ में जो वस्तु (कथा) होगी वह महानतम होगी क्योंकि कथा ही वह मूल आधार है जिससे सभ्यता, संस्कृति, दर्शन के विभिन्न आधार स्रोत सृजित होते हैं! कथा के साथ वस्तु के आधार रूप में चरित्र भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव से लोकोत्तर होते हैं। यह मनुष्य की अत्यंत स्वाभाविक वृत्ति है कि वह लोक को इतना उठाता है कि लोकोत्तर हो जाए और लोकोत्तर को अपनी समझ सीमा में लाने के लिए... लोक का... या सामान्य बनाता है। महाभारत में ये दोनों स्थितियां विद्यमान हैं।

और, महाभारत में जिस विराट संस्कृति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के व्यवहार की आधारशिला रखी गई है, उसका वहन करते हैं योगीराज कृष्ण, भीष्म, द्रोण, कौरव, पाण्डव और प्रकृति शक्ति में कुंती, द्रौपदी तथा गांधारी जैसी सती! इनके साथ सांस्कृतिक विकास के आरोह-अवरोह में सहयोगी होते हैं – कर्ण, द्रुपद तथा अन्य पात्र (चरित्र) जो सीधे महाभारत के रचना धरातल पर सक्रिय हैं।

इन सक्रिय चरित्रों के साथ पुराकाल के अन्य कथानक हैं जो इस रचना को भूत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि का आकार ग्रंथ बना देते हैं!

भक्ति की दृष्टि से महाभारत के प्रतिपाद्य हैं योगीराज कृष्ण अर्थात् महाभारत का अनुकूल पक्ष कृष्णत्व है और जो कृष्ण के अनुकूल नहीं, वह विरोधी है, अधर्म है साथ ही त्याज्य भी! इसी दृष्टि से महाभारत में आये अन्य पात्रों की स्थिति देखी जा सकती है पर ये सभी पात्र अपने व्यक्तित्व में विचित्र, उत्तेजक, प्रेरणाप्रद और मानवीय अनुभवों से भरे हैं। इनका एक धरातल महाभारत में वेदव्यास के शब्दों में व्यक्त होता है और उसके अतिरिक्त समय प्रवाह की

अनुकूलता-प्रतिकूलता में उनके अनेक स्वर उभरते हैं, इसीलिए महाभारत में यह भी कहा गया है कि यह ग्रंथ युगों तक कवियों, रचनाकारों को आंदोलित करता रहेगा।

महाभारत के पात्रों में यदि आश्चर्यजनक दिव्यानुभाव है तो उतना ही मानवानुभाव भी! चाहे धृतराष्ट्र हों, अर्जुन हों, भीष्म हों... सब कहीं-न-कहीं सर्वोच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित होकर कहीं-न-कहीं सामान्य भी बन जाते हैं! वे सहर्ष अपने बड़प्पन की चादर पर छोटेपन का धब्बा लगाने देते हैं जिससे उनकी सहजता और विश्वसनीयता बनी रह सके।

हमने इन अमर पात्रों को औपन्यासिक शैली में चित्रित करने का प्रयास किया है। यह उपन्यास नहीं है, न जीवन चरित्र... कहीं कुछ दोनों का संगम बन पड़ा है। हमने पूरा प्रयास किया है कि उनका महाभारतीय चरित्र यथावत बना रह सके और उनमें से मानवीय सहजता की अभिव्यक्ति भी हो सके।

हम कहां तक सफल हैं! जब तक आप पढ़ेंगे नहीं, कैसे पता चलेगा?

— डॉ. विनय
25, बैंग्लो रोड
दिल्ली-110007

कर्तव्यनिष्ठ कुन्ती

इस दारुण दृश्य की परिकल्पना इससे पहले किसी ने भी नहीं की होगी। नदी का किनारा सफेद वस्त्र पहने महिलाओं से भरा हुआ था। गिने चुने पुरुष, कुछ वृद्ध और कुछ बालक उनके बीच में इधर-उधर आते-जाते दिखाई दे रहे थे। पांचों पांडव, माता कुन्ती और द्रौपदी को साथ लेकर अपने बन्धुजनों को जलांजलि देने के लिए एकत्रित हुए थे।

कुन्ती द्रौपदी का सहारा लेकर बहुत सहमे-सहमे मन से युधिष्ठिर के पास आई। युधिष्ठिर को लगा कि मां कुछ कहना चाहती है। उन्होंने पूछा, “क्या बात है मां कुछ कहना है क्या?”

“हां वत्स यदि आज भी नहीं कह पाई तो फिर कब कहूंगी।”

“ऐसी कौन-सी बात है जिसके विषय में आप इस तरह से कह रही हैं। और आपका मन अशांत है।” युधिष्ठिर बोले।

“जब किसी बोझ को मन पर बहुत अधिक देर रखा जाता है तो ऐसा ही होता है।”

“आज्ञा दीजिए।”

युधिष्ठिर और मां को इस तरह उदास भाव से बात करते हुए देख कर शेष भाई भी वहीं आ गये। द्रौपदी कुछ जानी और अनजानी अनुभूतियों के साथ अतीत का एक चित्र देखने लगी। उसने सोचा कि हो न हो माताश्री कुछ न कुछ बहुत रहस्यमय बात कहना चाहती हैं।

युधिष्ठिर ने जैसे ही कुन्ती से कुछ पूछना चाहा वैसे ही कुन्ती उनसे बोली—“वत्स, जलांजलि देते हुए कर्ण को भी जलांजलि तुम्हें ही देनी होगी।”

युधिष्ठिर एकदम भौंचक्के रह गये और माता की आंखों में दृष्टि डाल कर कहने लगे—“क्या यह सच है?”

“मैं जानती हूं तुम्हें यह सुनकर कुछ विचित्र नहीं लगेगा। क्योंकि तुम स्वयं भूत और भविष्य का बहुत कुछ जानते हो, किन्तु हे पुत्र! कर्ण तुम सबका बड़का भाई था और केवल मेरे द्वारा सत्य को स्वीकार न करने की हिम्मत के कारण उसे जीवन भर सूतपुत्र बनकर रहना पड़ा।”

“यह आप क्या कह रही हैं माता?” सभी पांडव एक साथ बोले।

“मैं जो समझती थी वही सच है।” द्रौपदी ने भी अपने आपसे कहा।

“हां वत्स! यह मुझ अभागे जीवन की एक रहस्य गाथा है जिसे कृष्ण, सूर्य के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। यूं तो यह ऐसी बात है जिसे देवता तो जानते ही होंगे! कर्ण सूर्य के द्वारा मुझसे उत्पन्न पुत्र था जो तुम्हारे पिता पाण्डु से विवाह के पूर्व एक जिज्ञासावश उत्पन्न हुआ था।”

कुन्ती ने एक लम्बी सांस ली और कहा—“यह जो जीवन-भर उपेक्षित रहा है, जो हमेशा अर्जुन से द्वेष रखता था, जिसे द्रौपदी के स्वयंवर में सूतपुत्र कहकर स्वयं द्रौपदी ने अपमानित

किया और जो अपने ही भाई के द्वारा मारा गया वह कर्ण मेरा और सूर्य का पुत्र था। कर्ण को भी जलांजलि दो वत्स!”

“जलांजलि तो मैं दूंगा ही, किन्तु मां कर्ण के सम्बन्ध में जो कभी-कभी मेरे मन में आदर का भाव उठा करता था उसका कारण यही था। अनेक बार ऐसा लगता था जैसे रक्त की एक धारा दूसरी धारा को खींच रही है। बताओ मां इस पूरे आख्यान का शब्द-शब्द बताओ जिससे अपनी आंखों को आंसुओं से धोकर मैं कुछ पश्चाताप कर सकूं।”

“तुम्हें पश्चाताप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कष्ट मेरा था मैंने भोगा और यदि तुम कह ही रहे हो तो मैं आद्योपांत सारा वृत्तांत सुना देती हूं। मैं किस-किस तरह आत्ममंथन के मार्ग से निकली हूं यह मैं ही जानती हूं।”

युधिष्ठिर के हाथ में जल था। वह अपने भाई का तर्पण कर रहे थे और जैसे उनके सामने उस अतीत का दृश्य धीरे-धीरे बोलने लगा जिसके पात्र वे कई बार स्वयं रह चुके थे।

कुन्तिभोज का दरबार

राजा कुन्तिभोज का दरबार लगा हुआ था। दाएं-बाएं उच्चासनों पर सेनापति, मंत्री परिषद के सदस्य विराजमान थे। और सामने राज्य सिंहासन पर राजा कुन्तिभोज अपनी सम्पूर्ण आभा से विद्यमान थे। परिचारिका चंबर डुला रही थी। आज राजा के सामने हर्ष और भय का समान अवसर था। उनके विशेष दूत ने सूचना दी थी कि महर्षि दुर्वासा उनके राज्य में प्रवेश कर चुके हैं और कभी भी दरबार में आ सकते हैं।

महर्षि दुर्वासा को कौन नहीं जानता...उन क्रोधी मुनि को! प्रसन्न हों तो तीनों लोक की निधि दें और यदि प्राणी के दुर्भाग्य से अप्रसन्न हो जाएं तो क्रोधित होकर ऐसा शाप दें कि सर्वनाश हो जाए।

दरबार के अन्य सभासदों को भी संकेत से राजा ने बता दिया था कि एक ब्राह्मण आने वाले हैं। अतः आज प्रतिदिन का राजकार्य नहीं होगा। क्षमा और दण्ड की व्यवस्था महामंत्री स्वयं देख लेंगे। राजा अत्यंत उत्सुकतापूर्वक ब्राह्मण महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक-एक क्षण बेचैनी से कट रहा था।

तभी अत्यंत ऊंचे कद के एक प्रचण्ड तेजस्वी ब्राह्मण उपस्थित हुए। उन्होंने दाढ़ी-मूंछ, दण्ड और जटा धारण कर रखी थी।

उनका स्वरूप देखने ही योग्य था। उनके सभी अंग निर्दोष थे। वे तेज से प्रज्ज्वलित होते से जान पड़ते थे। उनके शरीर की कान्ति मधु के समान पीले वर्ण की थी। वे मधुर वचन बोलने वाले तथा तपस्या ओर स्वाध्याय रूप सदगुणों से विभूषित थे।

उन महातपस्वी ने राजा कुन्तिभोज से कहा—“किसी से ईर्ष्या न करने वाले नरेश! मैं तुम्हारे घर में भिक्षान्त भोजन करना चाहता हूं, परन्तु एक शर्त है तुम या तुम्हारे सेवक कभी मेरे मन

के प्रतिकूल आचरण न करें। अनघ! यदि तुम्हें मेरी यह शर्त ठीक जान पड़, तो उस दशा में मैं तुम्हारे घर में निवास करूंगा।”

“मैं अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहूंगा, चला जाऊंगा और जब जी में आयेगा चला आऊंगा। राजन्! मेरी शैया और आसन पर बैठना अपराध होगा। अतः यह अपराध कोई न करे।”

तब राजा कुन्तिभोज ने बड़की प्रसन्नता के साथ उत्तर दिया—“विप्रवर ‘एवमस्तु’—जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही होगा।” इतना कहकर वे फिर बोले—“हे तपस्वी! मेरे यहां मेरी पृथा नाम की एक यशस्विनी कन्या है, जो शील और सदाचार से सम्पन्न, साध्वी, संयम-नियम से रहने वाली और विचारशील है। वह सदा आपकी सेवा-पूजा के लिये उपस्थित रहेगी। उसके द्वारा आपका अपमान कभी न होगा। मेरा विश्वास है कि उसके शील और सदाचार से आप संतुष्ट होंगे।”

ऐसा कहकर उन ब्राह्मण देवता की विधिपूर्वक पूजा करके राजा ने अपनी विशाल नेत्रों वाली कन्या पृथा के पास जाकर कहा—

“वत्से! ये महाभाग ब्राह्मण मेरे घर में निवास करना चाहते हैं। मैंने ‘तथास्तु’ कहकर इन्हें अपने यहां ठहराने की प्रतिज्ञा कर ली है।”

“बेटी! तुम पर भरोसा करके ही मैंने इन तेजस्वी ब्राह्मण की आराधना स्वीकार की है, अतः तुम मेरी बात कभी मिथ्या न होने दोगी, ऐसी आशा है। तुम इनकी सेवा के लिए नियुक्त की गई हो।”

“ये प्रियवर महातेजस्वी, तपस्वी, ऐश्वर्यशाली तथा नियमपूर्वक वेदों के स्वाध्याय में संलग्न रहने वाले हैं। ये जिस-जिस वस्तु के लिये कहें, वह सब इन्हें ईर्ष्या रहित हो श्रद्धा के साथ देना।”

“क्योंकि ब्राह्मण ही उत्कृष्ट तेज है, ब्राह्मण ही परम तप है, ब्राह्मणों के नमस्कार से ही सूर्य देव आकाश में प्रकाशित हो रहे हैं।”

“माननीय ब्राह्मणों का सम्मान न करने के कारण ही महान असुर वातापि और उसी प्रकार तालजंघ ब्रह्मदण्ड से मारे गये।”

“अतः बेटी! इस समय सेवा का यह महान भार मैंने तुम्हारे ऊपर डाला है। तुम सदा नियमपूर्वक इन ब्राह्मण देवता की आराधना करती रहो।”

“माता-पिता का आनन्द बढ़ाने वाली पुत्री। मैं जानता हूँ, बचपन से ही तुम्हारा चित्त एकाग्र है। समस्त ब्राह्मणों, गुरुजनों, बन्धु-बान्धवों के साथ सदा यथोचित बर्ताव करती आयी हो। तुमने अपने सब्दाव से सबको प्रभावित कर लिया है।”

“निर्दोष अंगों वाली पुत्री! नगर में या अन्तःपुर में, सेवकों में भी कोई ऐसा मनुष्य नहीं है, जो तुम्हारे उत्तम बर्ताव से संतुष्ट न हो।”

“तथापि पृथे! तुम अभी बालिका और मेरी पुत्री हो, इसलिये इन क्रोधी ब्राह्मण के प्रति बर्ताव करने के विषय में तुम्हें कुछ उपदेश देने की आवश्यकता मैं अनुभव करता हूँ।”

“वाष्णि वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम शूरसेन की प्यारी पुत्री हो। पूर्वकाल में स्वयं तुम्हारे पिता ने बाल्यावस्था में ही बडौी प्रसन्नता के साथ तुम्हें मेरे हाथों सौंपा था।”

“तुम वसुदेव की बहिन तथा मेरी संतानों में सबसे बडौी हो। पहले उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं अपनी पहली संतान तुम्हें दे दूंगा। उसी के अनुसार उन्होंने तुम्हें मेरी गोद में अर्पित किया है, इस कारण तुम मेरी दत्तक पुत्री हो।”

“वैसे उत्तम कुल में तुम्हारा जन्म हुआ तथा मेरे श्रेष्ठ कुल में तुम पालित और पोषित होकर बडौी हुई। जैसे जल की धारा एक सरोवर से निकलकर दूसरे सरोवर में गिरती है, उसी प्रकार तुम एक सुखमय स्थान से दूसरे सुखमय स्थान में आयी हो।”

“शुभे! जो दूषित कुल में उत्पन्न होने वाली स्त्रियां हैं, वे किसी तरह विशेष आग्रह में पढौकर अपने अविवेक के कारण प्रायः बिगडौ जाती हैं।”

“पृथे! तुम्हारा जन्म राजकुल में हुआ है। तुम्हारा रूप भी अद्भुत है। कुल और स्वरूप के अनुसार ही तुम उत्तम शील, सदाचार और सदगुणों से संयुक्त एवं सम्पन्न हो। साथ ही विचारशील भी हो।”

“सुन्दर भाव वाली पृथे! तुम दर्प, दम्भ और मान को त्यागकर यदि इन वरदायक ब्राह्मण की आराधना करोगी, तो परम कल्याण की भागिनी होओगी।”

“कल्याणि ! तुम पाप रहित हो। यदि इस प्रकार इनकी सेवा करने में सफल हो गयीं, तो तुम्हें निश्चय ही कल्याण की प्राप्ति होगी और यदि तुमने अपने अनुचित बर्ताव से इन श्रेष्ठ ब्राह्मण को कुपित कर दिया, तो मेरा संपूर्ण कुल जलकर भस्म हो जायेगा।”

अपने पिता की बात सुनकर कुन्ती ने कहा—

“पिता! मैं नियमों में आबद्ध रहकर आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार निरंतर इन तपस्वी ब्राह्मण की सेवा-पूजा के लिए उपस्थित रहूंगी। मैं झूठ नहीं बोलती हूँ। मैं यथाशक्ति उनकी सेवा करूंगी।”

“यह मेरा स्वभाव ही है कि मैं ब्राह्मणों की सेवा-पूजा करूँ और आपका प्रिय करना तो मेरे लिये परम कल्याण की बात है ही।”

“ये पूजनीय ब्राह्मण यदि सायंकाल आवें, प्रातःकाल पधारें अथवा रात या आधी रात में भी दर्शन दें, ये कभी भी मेरे मन में क्रोध उत्पन्न नहीं कर सकेंगे। मैं हर समय इनकी समुचित सेवा के लिये प्रस्तुत रहूंगी।”

“मेरे लिये महान लाभ की बात यही है कि मैं आपकी आज्ञा के अधीन रहकर ब्राह्मणों की सेवा-पूजा करती हुई सदैव आपका हित-साधन करूँ।”

“महाराज! विश्वास कीजिये। आपके भवन में निवास करते हुये ये द्विजश्रेष्ठ कभी अपने मन

के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं देख पायेंगे। यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ।”

“मेरे पिता एवं निष्पाप नरेश! आपकी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये। मैं वही कार्य करने का प्रयत्न करूंगी, जो इन तपस्वी ब्राह्मण को प्रिय और आपके लिये हितकर हो। क्योंकि हे राजा! महाभाग ब्राह्मण भली-भांति पूजित होने पर सेवक को तारने में समर्थ होते हैं और इसके विपरीत अपमानित होने पर विनाशकारी बन जाते हैं।”

“मैं इस बात को जानती हूँ। अतः इन श्रेष्ठ ब्राह्मण को सब तरह से संतुष्ट रखूंगी। राजन्! मेरे कारण इन द्विजश्रेष्ठ से आपको कोई कष्ट नहीं प्राप्त होगा। आपकी शिक्षा मेरा संबल बनेगी।”

“हे पिता! किसी बालिका द्वारा अपराध बन जाने पर भी ब्राह्मण लोग राजाओं का अमंगल करने को उद्यत हो जाते हैं, जैसे प्राचीनकाल में सुकन्या द्वारा अपराध होने पर महर्षि च्यवन महाराज शर्याति का अनिष्ट करने को उद्यत हो गये थे। इसलिए आपकी चिन्ता स्वाभाविक है किन्तु मैं आपके द्वारा बताए ब्राह्मण के प्रति बर्ताव करने के विषय में जो कुछ कहा है, उसके अनुसार उत्तम नियमों के पालनपूर्वक इन श्रेष्ठ ब्राह्मण की सेवा में उपस्थित रहूंगी, मैं किसी प्रकार का प्रमाद नहीं करूंगी।”

इस प्रकार कहती हुई कुन्ती को बारंबार गले से लगाकर राजा ने उसकी बातों का समर्थन किया और कैसे-कैसे क्या करना चाहिए, इसके विषय में उसे सुनिश्चित आदेश दिया।

“भद्रे। अनिन्दिते! मेरे, तुम्हारे तथा कुल के हित के लिये तुम्हें निःशंक भाव से इसी प्रकार यह सब कार्य करना चाहिये।”

ब्राह्मण प्रेमी महायशस्वी राजा कुन्तिभोज ने पुत्री से ऐसा कहकर उन आये हुए द्विज की सेवा में पृथा को दे दिया। वे बहुत प्रसन्न हुए

और ब्राह्मण से कहा- यह मेरी पुत्री पृथा अभी बालिका है और सुख में पली हुई है। यदि आपको कोई अपराध कर बैठे, तो भी आप उसे मन में नहीं लाइयेगा।

“वृद्ध, बालक और तपस्वी जन यदि कोई अपराध कर दें, तो भी आप जैसे महाभाग ब्राह्मण प्रायः कभी उन पर क्रोध नहीं करते।”

“हे प्रभु! सेवक का महान अपराध होने पर भी ब्राह्मणों को क्षमा करना चाहिये तथा शक्ति और उत्साह के अनुसार उनके द्वारा की हुई सेवा-पूजा स्वीकार कर लेनी चाहिये।”

ब्राह्मण ने “ऐसा ही होगा” कहकर राजा का अनुरोध मान लिया। इससे उनके मन में बड़प्पी प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्राह्मण को रहने के लिये हंस और चन्द्रमा की किरणों के समान एक उज्ज्वल भवन दे दिया।

वहां अग्निहोत्र घर में उनके लिये चमचमाते हुए सुन्दर आसन की व्यवस्था हो गयी। भोजन आदि की सब सामग्री भी राजा ने वहां प्रस्तुत करा दी।

राजकुमारी कुन्ती आलस्य और अभिमान को दूर भगाकर ब्राह्मण की आराधना में बड़

यत्न से संलग्न हो गयी।

बाहर-भीतर से शुद्ध हो सती-साध्वी पृथा उन पूजनीय ब्राह्मण के पास जाकर देवता की भांति उनकी विधिवत आराधना करके उन्हें पूर्ण रूप से संतुष्ट रखने लगी।

इस प्रकार वह कन्या पृथा कठोर व्रत का पालन करती हुई शुद्ध हृदय से उन उत्तम व्रतधारी ब्राह्मण को अपनी सेवाओं द्वारा संतुष्ट रखने लगी। उसके मन में कभी प्रमाद नहीं आया।

वे श्रेष्ठ ब्राह्मण कभी यह कहकर कि मैं प्रातःकाल लौट आऊंगा चल देते और सायंकाल अथवा बहुत रात बीतने पर पुनः वापस आते थे परन्तु वह कन्या प्रतिदिन हर समय पहले की अपेक्षा अधिक-अधिक परिमाण में खाने-पीने आदि की सामग्री तथा शैया-आसन आदि प्रस्तुत करके उनकी सेवा-सत्कार किया करती थी।

नित्य प्रति अन्न आदि के द्वारा उन ब्राह्मण का सत्कार अन्य दिनों की अपेक्षा बढ़ाकर ही होता था। उनके लिये शैया और आसन आदि की सुविधा भी पहले की अपेक्षा अधिक ही की जाती थी। किसी बात में तनिक भी कमी नहीं की जाती थी किन्तु तपस्वी ब्राह्मण अपने उग्र स्वभाव के कारण कभी-कभी धिक्कारते, कभी बात-बात में दोषारोपण करते और प्रायः कटु वचन भी बोला करते थे, तो भी पृथा उनके प्रति कभी कोई अप्रिय बर्ताव नहीं करती थी।

वे कभी ऐसे समय में लौटकर आते थे, जबकि पृथा को दूसरे कामों से दम लेने की भी फुरसत नहीं होती थी और कभी वे कई दिनों तक आते ही नहीं थे। आने पर भी ऐसा भोजन मांग लेते, जो अत्यंत दुर्लभ होता।

परन्तु कुन्ती उन्हें उनकी मांगी हुई सब वस्तुएं इस प्रकार प्रस्तुत कर देती थी, मानो उनको पहले से ही तैयार करके रखा हो। वह अत्यंत संयत होकर शिष्य, पुत्री तथा छोटी बहिन की भांति सदा उनकी सेवा में लगी रहती थी।

उस अनिन्द्य कन्या रत्न कुन्ती से उन श्रेष्ठ ब्राह्मण को उनकी रुचि के अनुसार सेवा करके अत्यंत प्रसन्न कर लिया।

उसके शील, सदाचार तथा सावधानी से उन द्विजश्रेष्ठ को बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने कुन्ती का हित करने का पूरा प्रयत्न किया।

पिता कुन्तिभोज प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल में पूछते थे—“बेटी! तुम्हारी सेवा से ब्राह्मण को संतोष तो है न?”

वह यशस्विनी कन्या उन्हें उत्तर देती—“हां पिताजी! वे बहुत प्रसन्न हैं।” यह सुनकर महामना कुन्तिभोज को बड़ा हर्ष प्राप्त होता था।

तदनंतर जब एक वर्ष पूरा हो गया और पृथा के प्रति वात्सल्य स्नेह रखने वाले जयकर्ताओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण दुर्वासा जी ने उसकी सेवा में कोई त्रुटि नहीं देखी, तब वे चित्त होकर पृथा से इस प्रकार बोले—“भद्रे! मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूं। शुभे! कल्याणि! तुम मुझसे ऐसे वर मांगो, जो यहां दूसरे मनुष्यों के लिये दुर्लभ हों और जिनके कारण तुम संसार की समस्त सुन्दरियों को

अपने सुयश से पराजित कर सको।”

कुन्ती बोली, “वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! जब मुझ सेविका के ऊपर आप और पिताजी प्रसन्न हो गये, तब मेरी सब कामनाएं पूर्ण हो गयीं। विप्रवर! मुझे वर लेने की आवश्यकता नहीं है।” इस पर दुर्वासा बोले—

“भद्रे! पवित्र मुस्कान वाली पृथे! यदि तुम मुझसे वर नहीं लेना चाहती हो, तो देवताओं का आवाहन करने के लिये यह एक मंत्र ही ग्रहण कर लो।”

“भद्रे! तुम इस मंत्र के द्वारा जिस जिस देवता का आवाहन करोगी, वह तुम्हारे अधीन हो जाने के लिये बाध्य होगा।”

“वह देवता कामना रहित हो या कामनायुक्त, मंत्र के प्रभाव से शान्त चित्त हो, विनीत सेवक की भांति तुम्हारे पास आकर तुम्हारे अधीन हो जायेगा। और उसके आने से तुम्हारा कल्याण होगा।”

साध्वी पृथा दूसरी बार उन श्रेष्ठ ब्राह्मण की बात न टाल सकी, क्योंकि वैसा करने पर उसे उनके शाप का भय था।

तब ब्राह्मण ने निर्दोष अंगों वाली कुन्ती को उस मंत्र समूह का उपदेश दिया। यह मंत्र इस प्रकार पहले केवल ऋषियों को ही प्राप्त था।

पृथा को वह मंत्र देकर ब्राह्मण ने राजा कुन्तिभोज से कहा—“राजन्! मैं तुम्हारे घर में तुम्हारी कन्या द्वारा सदा समाहत और संतुष्ट होकर बड़ा सुख से रहा हूँ। अब हम अपनी कार्य सिद्धि के लिये यहां से जायेंगे।” ऐसा कहकर वे ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये।

ब्राह्मण को अन्तर्हित हुआ देख उस समय राजा को बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने अपनी पुत्री कुन्ती का विशेष आदर-सत्कार किया।

मंत्र परीक्षा

श्रेष्ठ ब्राह्मण दुर्वासा के चले जाने पर किसी कारणवश राजकन्या कुन्ती ने मन ही मन सोचा, इस मंत्र के समूह में कोई बल है या नहीं।

“उन महात्मा ब्राह्मण ने मुझे यह कैसा मन्त्र समूह प्रदान किया है? उसके बल को मैं शीघ्र ही जानूंगी।” कुन्ती की जिज्ञासा बढ़ने लगी थी।

इस प्रकार सोच-विचार में पड़ी हुई कुन्ती ने अकस्मात् अपने शरीर में ऋतु का प्रादुर्भाव हुआ देखा। कन्यावस्था में ही अपने को रजस्वला पाकर उस बालिका ने लज्जा का अनुभव किया।

तदनन्तर एक दिन कुन्ती अपने महल के भीतर एक बहुमूल्य पलंग पर लेटी हुई थी। उसी समय उसने पूर्व दिशा में उदित होते हुए सूर्यमण्डल की ओर दृष्टिपात किया। उसने पहले उधर

से अपना मुंह हटाया फिर देखने पर भी प्रातः संध्या के समय उगते हुए सूर्य की सुमध्यमा कुन्ती को तनिक भी ताप का अनुभव नहीं हुआ। उसके मन और नेत्र उन्हीं में आसक्त हो गये।

उस समय उसकी दृष्टि दिव्य हो गयी। उसने दिव्य रूप में दिखायी देने वाले भगवान् सूर्य की ओर देखा। वे कवच धारण किये एवं कुण्डलों से विभूषित थे।

उन्हें देखकर कुन्ती के मन में अपने मंत्र की शक्ति की परीक्षा करने के लिये कौतूहल पैदा हुआ। तब उस सुन्दरी राजकन्या ने सूर्यदेव का आवाहन किया।

उसने विधिपूर्वक आचमन और प्राणायाम करके भगवान् दिवाकर का आवाहन किया। राजन! तब भगवान् सूर्य बडङ्गी उतावली के साथ वहां आये।

उनकी अंगकान्ति मधु के समान पिंगल वर्ण की थी। भुजाएं बडङ्गी-बडङ्गी और ग्रीवा शंख के समान थी। वे हंसते हुए जान पडङ्गते थे। उनकी भुजाओं में अंगद चमक रहे थे और मस्तक पर बंधा हुआ मुकुट शोभा पाता था। वे सम्पूर्ण दिशाओं को प्रज्ज्वलित-सी कर रहे थे।

वे योग शक्ति से अपने दो स्वरूप बनाकर एक तो वहां आये और दूसरे आकाश में तपते रहे। उन्होंने कुन्ती को समझाते हुए परम मधुर वाणी में कहा—“तुमने मुझे बुलाया है।”

“भद्रे! मैं तुम्हारे मन्त्र के बल से आकृष्ट होकर तुम्हारे वश में आ गया हूं। राजकुमारी! बताओ, तुम्हारे अधीन रहकर मैं कौन-सा कार्य करूं? तुम जो कहोगी, वही करूंगा।”

“भगवान्! आप जहां से आये हैं, वहीं पधारिये। मैंने आपको कौतूहल-वश ही बुलाया था। प्रभो! प्रसन्न होइये।”

“तनुमध्यमे! जैसा तुम कह रही हो, उसके अनुसार मैं चला तो जाऊंगा ही, परन्तु किसी देवता को बुलाकर उसे व्यर्थ लौटा देना न्याय की बात नहीं है। यह किसी भी रूप में उचित नहीं।”

“सुभगे! तुम्हारे मन में यह संकल्प उठा था कि सूर्यदेव से मुझे एक ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो संसार में अनुपम पराक्रमी तथा जन्म से ही दिव्य कवच एवं कुण्डलों से सुशोभित हो।”

“अतः गजगामिनी! तुम मुझे अपना शरीर समर्पित कर दो। अंगने! ऐसा करने से तुम्हें अपने संकल्प के अनुसार तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।”

“भद्रे! सुन्दर मुस्कान वाली पृथे। तुमसे समागम करके मैं पुनः लौट जाऊंगा, परन्तु यदि आज तुम मेरा प्रिय वचन नहीं मानोगी, तो मैं कुपित होकर तुमको, उस मन्त्रदाता ब्राह्मण को और तुम्हारे पिता को भी शाप दे दूंगा। तुम्हारे कारण मैं उन सबको जलाकर भस्म कर दूंगा, इसमें संशय नहीं है।”

“तुम्हारे मूर्ख पिता को भी मैं जला दूंगा। जो तुम्हारे इस अन्याय को नहीं जानता है तथा जिसने तुम्हारे शील और सदाचार को जानें बिना ही मन्त्र का उपदेश दिया है, उस ब्राह्मण को भी अच्छी सीख दूंगा।”

“भामिनी! ये इन्द्र आदि समस्त देवता आकाश में खडङ्ग होकर मुस्कराते हुए से मेरी ओर

इस भाव से देख रहे हैं कि मैं तुम्हारे द्वारा कैसे ठगा गया। देखो न, इन देवताओं की ओर! मैंने तुम्हें पहले से ही दिव्य दृष्टि दे दी है, जिससे तुम मुझे देख सकी हो।”

सूर्य की बात सुनकर कुन्ती भयभीत हो गई किन्तु तभी एक क्षण बाद राजकुमारी कुन्ती ने आकाश में अपने-अपने विमानों पर बैठे हुए सब देवताओं को देखा। जैसे सहस्रों किरणों से युक्त भगवान सूर्य अत्यंत दीप्तिमान दिखायी देते हैं, उसी प्रकार वे सब देवता प्रकाशित हो रहे थे।

उन्हें देखकर बालिका कुन्ती को बड़का लज्जा हुई। उस देवी ने भयभीत होकर सूर्यदेव से कहा—“किरणों के स्वामी दिवाकर! आप अपने विमान पर चले जाइये। छोटी बालिका होने के कारण मेरे द्वारा आपको बुलाने का यह दुःखदायक अपराध बन गया है।”

“मेरे पिता-माता तथा अन्य गुरुजन ही मेरे इस शरीर को देने का अधिकार रखते हैं। मैं अपने धर्म का लोप नहीं करूंगी। स्त्रियों के सदाचार में अपने शरीर की पवित्रता को बनाये रखना ही प्रधान है और संसार में उसी की प्रशंसा की जाती है।”

“प्रभो! प्रभाकर! मैंने अपने बाल-स्वभाव के कारण मंत्र का बल जानने के लिये ही आपका आवाहन किया है। एक अनजान बालिका समझकर आप मेरे इस अपराध को क्षमा कर दें।”

“कुन्तिभोजकुमारी कुन्ती। बालिका समझकर ही मैं तुमसे इतना अनुनय-विनय करता हूँ। दूसरी कोई स्त्री मुझसे अनुनय का अवसर नहीं पा सकती। भीरू! तुम मुझे अपना शरीर अर्पण करो। ऐसा करने से ही तुम्हें शांति प्राप्ति हो सकती है।”

“निर्दोष अंगों वाली सुन्दरी! तुमने मन्त्र द्वारा मेरा आवाहन किया है, इस दशा में उस आवाहन को व्यर्थ करके तुमसे मिले बिना ही लौट जाना मेरे लिये उचित न होगा। भीरू! यदि मैं इसी तरह लौटूंगा, तो जगत में मेरा उपहास होगा। शुभे! सम्पूर्ण देवताओं की दृष्टि में भी मुझे निन्दनीय बनना पड़ेगा।”

“अतः तुम मेरे साथ समागम करो। तुम मेरे ही समान पुत्र पाओगी और समस्त संसार में विशिष्ट समझी जाओगी, इसमें संशय नहीं है।”

सूर्य अपनी बात पर दृढ़ थे अतः राजकन्या मनस्विनी कुन्ती नाना प्रकार से मधुर वचन कहकर अनुनय विनय करने पर भी भगवान को मनाने में सफल न हो सकी।

जब वह बाला अन्धकार नाशक भगवान सूर्यदेव की टाल न सकी तब शाय से भयभीत हो दीर्घकाल तक मन ही मन कुछ सोचने लगी।

उसने सोचा कि क्या उपाय करूँ? जिसमें मेरे कारण मेरे निरपराध पिता तथा निर्दोष ब्राह्मण को क्रोध में भरे हुए इस सूर्यदेव से शाप न प्राप्त हो।

“सज्जन बालक को भी चाहिये कि वह अत्यंत मोह के कारण पापशून्य तेजस्वी तथा तपस्वी पुरुषों के अत्यंत निकट न जाये।”

“परन्तु मैं तो आज अत्यंत भयभीत हो भगवान सूर्यदेव के हाथ में पड़ गयी हूँ, तो भी स्वयं

अपने शरीर को देने-जैसा न करने योग्य नीच कर्म कैसे करूं ?”

कुन्ती शाप से अत्यन्त डरकर मन ही मन तरह-तरह की बातें सोच रही थी। उसके सारे अंग मोह से व्याप्त हो रहे थे। वह बार-बार आश्चर्यचकित हो रही थी। एक ओर तो वह शाप से आतंकित थी, दूसरी ओर उसे भाई-बन्धुओं का भय लगा हुआ था। उस दशा में वह लज्जा के कारण विश्रृंखला वाणी द्वारा सूर्यदेव से इस प्रकार बोली—

“देव! मेरे पिता, माता तथा अन्य बान्धव जीवित हैं। उन सबके जीते जी स्वयं आत्मदान करने पर कहीं शास्त्रीय विधि का लोप न हो जाये।”

“भगवन! यदि आपके साथ मेरा वेदोक्त विधि के विपरीत समागम हो तो, मेरे ही कारण जगत में इस कुल की कीर्ति नष्ट हो जायेगी। अथवा तपने वालों में श्रेष्ठ दिवाकर! यदि बन्धुजनों के दिये बिना ही मेरे साथ अपने समागम को आप धर्मयुक्त समझते हो तो मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर सकती हूं।”

“दुर्धर्ष देव! मैं आपको आत्मदान करके भी सती साध्वी रह सकती हूं। आप में ही देहधारियों के धर्म, यश, कीर्ति तथा आयु प्रतिष्ठित हैं।”

“शुचिस्मिते! वरारोहे! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी बात सुनो। तुम्हारे पिता, माता अथवा अन्य गुरुजन ही तुम्हें देने में समर्थ नहीं हैं। तुम स्वयं भी यह निर्णय ले सकती हो।”

“सुन्दर भाव वाली कुन्ती! ‘कम’ धातु से कन्या शब्द की सिद्धि होती है। सुन्दरी! वह सब वरों में से किसी को भी स्वतंत्रतापूर्वक अपनी कामना का विषय बना सकती है, इसलिए इस जगत में उसे कन्या कहा गया है। यह कन्या का अधिकार है।”

“कुन्ती! मेरे साथ समागम करने से तुम्हारे द्वारा कोई अधर्म नहीं बन रहा है। भला मैं लौकिक कामवासना के वशीभूत होकर अधर्म का वरण कैसे कर सकता हूं?”

“मेरे लिए सभी स्त्रियां और पुरुष आवरण रहित हैं, क्योंकि मैं सबका साक्षी हूं। जो अन्य सब विकार हैं, वह तो प्राकृत मनुष्यों का स्वभाव माना गया है।”

“तुम मेरे साथ समागम करके पुनः कन्या ही बनी रहोगी और तुम्हें महाबाहु एवं महायशस्वी पुत्र प्राप्त होगा।”

“समस्त अन्धकार को दूर करने वाले सूर्यदेव! यदि आपसे मुझे पुत्र प्राप्त हो तो वह महाबाहु, महाबली तथा कुण्डल और कवच से विभूषित शूरवीर हो।”

“भद्रे! तुम्हारा पुत्र महाबाहु, कुण्डलधारी तथा दिव्य कवच धारण करने वाला होगा। उसके कुण्डल और कवच दोनों अमृतमय होंगे।”

“प्रभो! आप मेरे गर्भ से जिसको जन्म देंगे, उस मेरे पुत्र के कुण्डल और कवच यदि अमृत से उत्पन्न हुए होंगे, तो भगवन्! आपने जैसा कहा है, उसी रूप में मेरा आपके साथ समागम हो। आपका वह पुत्र आपके ही समान वीर्य, रूप, धैर्य, ओज तथा धर्म से युक्त होना चाहिये।”

“यौवन के मद से सुशोभित होने वाली भीरू राजकुमारी! माता अदिति ने मुझे जो कुण्डल दिये हैं, उन्हें मैं तुम्हारे इस पुत्र को दे दूंगा। साथ ही यह उत्तम कवच भी उसे अर्पित करूंगा।”

“भगवान! गोपते! जैसा आप कहते हैं, वैसा ही पुत्र यदि मुझे प्राप्त हो, तो मैं आपके साथ उत्तम रीति से समागम करूंगी।”

तब बहुत अच्छा कहकर आकाशचारी राहु शत्रु भगवान सूर्य ने योग रूप से कुन्ती के शरीर में प्रवेश किया और उसकी नाभि को छू दिया।

तब वह राजकन्या सूर्य के तेज से विह्वल और अचेत-सी होकर शैया पर गिर पड़ी।

“सुन्दरी! मैं ऐसी चेष्टा करूंगा, जिससे तुम समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दोगी और कन्या ही बनी रहोगी।”

तब संगम के लिये उद्यत हुए महातेजस्वी सूर्यदेव की ओर देखकर लज्जित हुई उस राजकन्या ने उनसे कहा—“प्रभो! ऐसा ही हो।”

ऐसा कहकर कुन्तिनरेश की कन्या पृथा भगवान सूर्य से पुत्र के लिये प्रार्थना करती हुई अत्यंत लज्जा और मोह के वशीभूत होकर कटी हुई लता की भांति उस पवित्र शैया पर गिर पड़ी।

तत्पश्चात् सूर्यदेव ने उसे अपने तेज से मोहित कर दिया और योग शक्ति के द्वारा उसके भीतर प्रवेश करके अपना तेजोमय वीर्य स्थापित कर दिया। उन्होंने कुन्ती को दूषित नहीं किया। उसका कन्याभाव अछूता ही रहा। तदनन्तर वह राजकन्या फिर सचेत हो गयी।

♪ ♪ ♪

समय व्यतीत होता गया। आकाश में जैसे चन्द्रमा का उदय होता है, उसी प्रकार ग्यारहवें मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को कुन्ती के उदर में भगवान सूर्य के द्वारा गर्भ स्थापित हुआ।

सुन्दर कटिप्रदेश वाली कुन्ती भाई-बन्धुओं के भय से उस गर्भ को छिपाती हुई धारण करने लगी। अतः कोई भी मनुष्य नहीं जान सका कि वह गर्भवती है।

एक धाय के सिवा दूसरी कोई स्त्री भी इसका पता न पा सकी। कुन्ती सदा कन्याओं के अन्तःपुर में रहती थी एवं अपने रहस्य को छिपाने में वह अत्यन्त निपुण थी।

तदनन्तर सुन्दरी पृथा ने यथासमय भगवान सूर्य के कृपा प्रसाद से स्वयं कन्या ही बनी रहकर देवताओं के समान तेजस्वी एक पुत्र को जन्म दिया।

उसने अपने पिता के ही समान शरीर पर कवच बांध रखा था और उसके कानों में सोने के बने हुए दो दिव्य कुण्डल जगमगा रहे थे। उस बालक की आंखें सिंह के समान और कंधे वृषभ-जैसे थे।

उस बालक के पैदा होते ही भामिनी कुन्ती ने धाय से सलाह लेकर एक पिटारी मंगवायी और

उसमें सब ओर से सुन्दर मुलायम बिछौने बिछा दिये। इसके बाद उस पिटारी में चारों ओर मोम चुपड□ दिया, जिससे उसके भीतर जल न प्रवेश कर सके। जब वह सब तरह से चिकनी और सुखद हो गयी, तब उसके भीतर उस बालक को लिटा दिया और उसका सुन्दर ढक्कन बंद कर दिया तथा रोते-रोते उस पिटारी को अश्व नदी में छोड□ दिया।

यद्यपि वह यह जानती थी किसी कन्या के लिये गर्भधारण करता सर्वथा निषिद्ध और अनुचित है, तथापि पुत्र स्नेह उमड□ जाने से कुन्ती वहां करुणाजनक विलाप करने लगी।

उस समय अश्व नदी के जल में उस पिटारी को छोड□ते समय रोती हुई कुन्ती ने जो बातें कहीं। कर्ण उनको स्वप्न में ही सुनते रहे। कुन्ती कह रही थी:

“मेरे बच्चे! जलचर, थलचर, आकाशचारी तथा दिव्य प्राणी तेरा मंगल करें। सारी प्राकृतिक शक्तियां तेरी रक्षा करें।”

“तेरा मार्ग मंगलमय हो। बेटा! तेरे पास शत्रु न आयें। जो आ जायें उनके मन में तेरे प्रति द्रोह की भावना न रहे। तू सुरक्षित रहे।”

“जल में उसके स्वामी राजा वरुण तेरी रक्षा करें। अन्तरिक्ष में वहां रहने वाले सर्वगामी वायुदेव तेरी रक्षा करें।”

“पुत्र! जिन्होंने दिव्य रीति से तुझे मेरे गर्भ में स्थापित किया है वे तपने वालों में श्रेष्ठ तेरे पिता भगवान सूर्य सर्वत्र तेरा पालन करें।”

“आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, इन्द्र सहित मरुदगण, दिक्पालों सहित दिशाएं तथा समस्त देवता सभी समविषम स्थानों में तेरी रक्षा करें। यदि विदेश में भी तू जीवित रहेगा, तो मैं इन कवच-कुण्डल आदि चिन्हों से उपलक्षित होने पर तुझे पहचान लूंगी।”

“बेटा! तेरे पिता भगवान भुवन भास्कर धन्य हैं, जो अपनी दिव्य दृष्टि से नदी की धारा में स्थित हुए तुझको देखेंगे।”

“देवपुत्र! वह रमणी धन्य है, जो तुझे अपना पुत्र बनाकर पालेगी और तू भूख-प्यास लगने पर जिसके स्तनों का दूध पियेगा।”

उस भाग्यशालिनी नारी ने कौन-सा ऐसा शुभ स्वप्न देखा होगा, जो सूर्य के समान तेजस्वी, दिव्य कवच से संयुक्त, दिव्यकुण्डल भूषित, कमलदल के समान विशाल नेत्र वाले, लाल कमल दल के सदृश और कान्ति लाने, सुन्दर ललाट और मनोहर केश समूह से विभूषित तुझ जैसे दिव्य बालक को अपना पुत्र बनायेगी।

“वत्स! जब तू धरती पर पेट के बल सरकता फिरेगा और समझ में न आने वाली मधुर तोतली बोली बोलेंगे, उस समय तेरे धूलिधसरित अंगों को जो लोग देखेंगे, वे धन्य हैं।”

“पुत्र! हिमालय के जंगल में उत्पन्न हुए केसरी सिंह के समान तुझे जवानी में जो लोग देखेंगे वे धन्य हैं।”

इस तरह बहुत-सी बातें कहकर करुण विलाप करती हुई कुन्ती ने उस समय अश्व नदी के जल में वह पिटारी छोड़ दी।

आधी रात के समय कमलनयनी कुन्ती पुत्र शोक से आतुर हो उसके दर्शन की लालसा से धात्री के साथ नदी के तट पर देर तक रोती रही।

पेटी को पानी में बहाकर, कहीं पिताजी जग न जायें, इस भय से वह शोक से आतुर हो पुनः राजभवन में चली गयी।

राजभवन जाकर भी मां को चैन कहां। कुन्ती ने थोड़ा समय बाद ही एक विशेष दूती सब कुछ जानने के लिए भेज दी। दूती ने आकर उन्हें समाचार दिया कि उनका पुत्र सुरक्षित है। मां केवल यही सुनकर शांत न रह सकी। कुन्ती ने विस्तार से जानना चाहा कि किस तट उसका पुत्र जल की तरंगों पर तैरता उतराता—कहां गया? और किसने उसे पाला।

तो दूती ने बताया कि...

वह पिटारी अश्व नदी से चर्मण्वती नदी में गयी। चर्मण्वती से यमुना में और वहां से गंगा में जा पहुंची। अभी तक बालक का कुछ भी नहीं बिगड़¹। पिटारी में सोया हुआ वह बालक गंगा की लहरों से बहाया जाता हुआ चम्पापुरी के पास सूत राज्य में जा पहुंचा।

उसके शरीर का दिव्य कवच और कानों के कुण्डल—ये अमृत से प्रकट हुए थे। वे ही विधाता द्वारा रचित उस देव कुमार को जीवित रख रहे थे।

इसी समय राजा धृतराष्ट्र का मित्र अधिरथ सूत अपनी स्त्री के साथ गंगाजी के तट पर गया। उसकी परम सौभाग्यवती पत्नी इस भूतल पर अनुपम सुन्दरी थी। उसका नाम था राधा। उसके कोई पुत्र नहीं हुआ था।

राधा पुत्र प्राप्ति के लिये विशेष यत्न करती रहती थी। दैवयोग से उसी ने गंगा जी के जल में बहती हुई उस पिटारी को देखा।

पिटारी के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लता लपेट दी गयी थी और सिन्दूर का लेप लगा होने से उसकी बड़² शोभा हो रही थी। गंगा की तरंगों के थपेड़³ खाकर वह पिटारी तट के समीप आ लगी।

भामिनी राधा ने कौतूहल वश उस पिटारी को सेवकों से पकड़⁴वा मंगाया और अधिरथ सूत को इसकी सूचना दी।

अधिरथ ने उस पिटारी को पानी से बाहर निकालकर जब यन्त्रों द्वारा उसे खोला, तब उसके भीतर एक बालक को देखा।

वह बालक प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी था। उसने अपने अंगों में स्वर्णमय कवच धारण कर रखा था। उसका मुख कानों में पड़⁵ हुए दो उज्ज्वल कुण्डलों से प्रकाशित हो रहा था।

उसे देखकर पत्नी सहित सूत के नेत्र कमल आश्चर्य एवं प्रसन्नता से खिल उठे। उसने बालक को गोद में लेकर अपनी पत्नी से कहा—

“भीरू! भामिनि! जब से मैं पैदा हुआ हूं, तब से आज तक मैंने ऐसा अद्भुत बालक नहीं देखा है। मैं समझता हूं, यह कोई देव बालक ही हमें भाग्यवश प्राप्त हुआ है।”

“मुझ पुत्रहीन को अवश्य ही देवताओं ने दया करके यह पुत्र प्रदान किया है।” ऐसा कहकर अधिरथ ने वह पुत्र राधा को दे दिया।

राधा ने भी कमल के भीतरी भाग के समान कान्तिमान, शोभाशाली तथा दिव्य रूपधारी उस देव बालक को विधिपूर्वक ग्रहण किया। निश्चय ही दैव की प्रेरणा से राधा के स्तनों से दूध भी झरने लगा।

उसने विधिपूर्वक उस बालक का पालन-पोषण किया और वह धीरे-धीरे सबल होकर

दिनोंदिन बढ़ने लगा। तभी से उस सुत-दम्पति के और भी अनेक औरस पुत्र उत्पन्न हुए।

पाण्डु से विवाह और पुत्रों का जन्म

कुन्ती अपने पुत्र की सूचना पाती रहती किन्तु कर्ण की सूचना से उसे जितना हर्ष होता उतनी ही चिन्ता भविष्य को देखकर रहती। कुन्ती जानती थी कि समय गतिमान है और ये सारी व्यवस्थाएं ऐसी ही नहीं रहेगी। इस पूरे जीवन में समय का कोई खण्ड तो ऐसा होगा ही जब वह जल में प्रवाहित अपने बेटे को पुत्र कहकर पुकारेगी।

जो वस्तु मनुष्य के पास होती है वह उसकी चिन्ता कम करता है और जो उसकी होते हुए भी उसके पास नहीं रहती उसके प्रति उसका रागात्मक झुकाव बना रहता है। यह कल्पना की बात नहीं कि अपनी ही संतान अपने पास नहीं। वह कहीं और पल रही है तो उसके प्रति एक विशेष प्रकार का उत्तेजनात्मक आग्रह बनेगा ही। कुन्ती यही अनुभव करती और यही चिन्ता उसे पीड़ित भी देती।

यह पीड़ित जितनी मन को मथ देने वाली थी उतना ही उसका भविष्य में कितना भाग मन का रहेगा और कितना विवेक का, वह इसका तालमेल बैठा रही थी।

कुन्ती सोच ही रही थी कि उसको विशिष्ट सखी ने पिता श्री के द्वारा बुलाये जाने की सूचना दी “मुझे पिता बुला रहे हैं। यह अवसर ऐसा तो नहीं है किन्तु कोई भी काम आ सकता है” कुन्ती अत्यंत शीघ्रता से अपने पिता के पास आई।

“आज्ञा पिताश्री” कुन्ती ने पिता के समीप आते हुए बड़बुद मोहक शब्दों में कहा।

“आज्ञा नहीं बेटा एक सूचना है। और मुझे तुम्हारा मत भी लेना है।” कुन्तिभोज ने अपनी पुत्री के सिर पर हाथ रखते हुए कहा।

“क्या बात है पिताश्री?”

तब कुन्तिभोज बोले—उन्होंने अपनी आंखें आकाश की ओर कर लीं—“तुम्हारे स्वयंवर का समय आ गया है। मेरे पास अनेक राजाओं के निमंत्रण आ रहे हैं। अनेक राजकुमार तुम्हें प्राप्त करने के लिए व्याकुल हैं किन्तु राजकुल की मर्यादा के अनुसार स्वयंवर तुम्हारा अधिकार है। तुम्हारी स्वीकृति हो तो स्वयंवर की तिथि निश्चित कर दें।”

कुन्ती पिता की बात का क्या उत्तर देती, उसने लजाकर अपना मुख नीचे कर लिया मानो पिता की बात को स्वीकार कर लिया।

समय आने पर कुन्तिभोज ने स्वयंवर की सभी विधि पूरी की। उसने अनेक राजाओं को निमंत्रण भेजा। जब सभी राजाओं को कुन्ती के स्वयंवर का पता चला तो जो विवाह के इच्छुक थे वे स्वयंवर में पधारे। वहां पर किसी प्रकार की वीरोचित शर्त नहीं रखी गयी थी। यह स्वयंवर केवल दर्शन मात्र से ही सम्पन्न होना था।

कुन्तिभोज की सभा व्यवस्थित रूप से सजाई गई थी। सभा के चारों कोनों पर अलग-अलग दिशाओं से आने वाले राजा और राजकुमार अपने आसनों पर बैठ गये। धीरे-धीरे स्वयंवर स्थल पर निर्दोष अंगों वाली शुभ लक्षणों से सम्पन्न कुन्ती ने अपनी सखियों सहित प्रवेश किया। उसने चारों ओर देखा तो एक विशिष्ट घोषक खड्ग हो गया।

घोषक ने सबसे पहले सभा में उपस्थित राजाओं का परिचय दिया। उसने एक-एक की वीरता का वर्णन करते हुए राजकुमारी का ध्यान बारी-बारी से सबकी ओर आकर्षित किया। फिर उसके बाद उसने कुन्ती के विषय में राजाओं को बताया कि वह विशाल नेत्रों वाली तथा धर्म और रूप से सम्पन्न है। यह महान व्रतों का पालन करने वाली है।

हमारी राजकुमारी में स्त्रियों के सभी गुण विद्यमान हैं। वह युवा है, रूप यौवन से परिपूर्ण उसके शरीर की कांति आने आप ही परिलक्षित हो रही है।

घोषक के परिचय के बाद कुन्ती ने एक बार फिर वरमाला हाथ में लिये चारों ओर देखा। उसने देखा कि एक ओर भरतवंश शिरोमणि पाण्डु बैठे हैं। पाण्डु को देखकर कुन्ती के मन में स्नेह के भाव जाग उठे। पाण्डु का विशाल चौड़ा वक्ष, बड़ा-नेत्र, शरीर से प्रकट होने वाला वीरत्व और तेज, सूर्य की तरह से प्रकाशित व्यक्तित्व।

कुन्ती धीरे-धीरे मनुष्यों में श्रेष्ठ पाण्डु के समीप आई और उनके गले में जयमाला डाल दी। जब शेष राजाओं ने यह देखा तो उन्होंने पाण्डु को बधाई दी और अपने-अपने रथों तथा अन्य वाहनों पर बैठकर वे सब लौट गये।

विवाह की वेदी सज गयी थी और अग्नि देवता की साक्षी के साथ पाण्डु तथा कुन्ती का विवाह हो गया। यह कुन्ती का स्वयं का निर्णय था इसलिए किसी के मन में किसी प्रकार की कोई द्विविधा नहीं थी, किन्तु कुन्ती राजाओं के विवाह सम्बन्धी रूपों को भी जानती थी। इसीलिए जब भीष्म जी ने पाण्डु के दूसरे विवाह की चर्चा की तो कुन्ती को आश्चर्यजनक नहीं लगा। उसने सुना कि मद्र देश के राजा शल्य की बहन माद्री से भीष्म पाण्डु का विवाह करना चाहते हैं।

कुन्ती यह तो नहीं सोच पा रही थी कि दूसरे विवाह की क्या आवश्यकता पड़ गयी है फिर भी उसने बहुत सहजता से उसको स्वीकार किया। अब तक का जितना भी उसका जीवन बीता था उसके आरोह और अवरोह से केवल वही परिचित थी। कुन्ती की सखी ने दूत के द्वारा सभी सूचना पाकर कुन्ती को आकर बताया कि भीष्म ने शल्य से उनकी बहन पाण्डु के लिए मांगी है। एक तरह से भीष्म ने शल्य से विनती की और जब शल्य ने शुल्क लेने के नियम को दोहराया तो भीष्म ने कहा कि आवश्यक नहीं कि परम्परा का अंधानुकरण किया जाये। फिर भी महातेजस्वी भीष्म ने राजा शल्य को स्वर्णाभूषण, मोती, मूंगे के आभूषण प्रदान किये।

शल्य ने बहुत अधिक धन देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और माद्री को पाण्डु से विवाह के लिए समर्पित कर दिया।

भीष्म माद्री को हस्तिनापुर लेकर आये और विधिवत पाण्डु से विवाह करा दिया।

पाण्डु के विवाह उनके जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होकर आये। सबसे पहली बात तो यही हुई कि उन्होंने अपने विवाहों के बाद एक विलासी के जीवन के रूप में अपना जीवन न बिताकर एक योद्धा बनना ही निश्चित किया और विजय के लिए निकल पड़। उन्होंने विन्ध्य पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर विजय के लिए निकल पड़। उन्होंने विन्ध्य पर्वत के पूर्व दक्षिण की ओर स्थित प्रदेशों पर अधिकार किया, फिर मगध को जीतकर मिथिला को भी परास्त किया। जो भी पाण्डु के सामने उनका मुकाबला करने के लिए आते उनसे पाण्डु युद्ध करते और जो रत्न आदि से पाण्डु का स्वागत करते उनसे पाण्डु मैत्री करते।

वह समय भी आ गया जब पाण्डु अपना विजय पथ सम्पन्न करके हस्तिनापुर लौटे, किन्तु यह कैसा विचित्र व्यक्ति है, कुन्ती सोचने लगी। इतनी अथाह राशि और उन्मुक्त हाथ से दान! कुन्ती ने देखा कि उनके पति पाण्डु राजा धृतराष्ट्र को, भीष्म को, अपनी माताओं तथा बन्धु-बांधवों को बांटते चले जा रहे हैं। कुन्ती को अनुभव हुआ कि उसने राजा वेश में एक वीतरागी से विवाह किया है।

वीतरागी से विवाह और अपने भीतर उत्पन्न होता हुआ एक विराग कुन्ती ने अनुभव किया। उसे लगा जैसे वह एक ऐसी केन्द्रीय शक्ति है जिसकी उत्पत्ति उसके तेज में इसलिए निहित है कि वह कुछ भी पाने की लालसा न रखे। कुन्ती को लगा कि ये पांच तत्व किसी भी रूप में एक माया तत्व से गुंथे हुए आकार लेते हैं और उसे भी कुछ ऐसी चीजों को आकार देना होगा जो न कभी पहले रही और न बाद में होगी।

अपनी सोच को इतनी जल्दी फलित होता हुआ जानकर कुन्ती को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अभी-अभी तो उसके पति विजयी होकर लौटे थे और यह क्या सूचना जो उसके कानों में रस भी घोल रही है और कठोर ध्वनि भी कर रही है। कुन्ती क्या करें? माद्री से कुछ पूछे तो उसे पता है माद्री सदा की भांति सिर झुका देगी।

निर्णय तो कुन्ती को ही लेना होगा और वह भी क्या निर्णय लेगी? वन में जाने का निर्णय तो पाण्डु कर ही चुके हैं। उसे तो केवल अपने पति के पीछे-पीछे जाना है। एक क्षण के लिए कुन्ती सोचने लगी।

“विधाता को क्या स्वीकार है। एक अज्ञात भय उसकी शिराओं में प्रवेश करने लगा। वन! वन उसके जीवन में कितना लिखा है। अभी तो उसने राजमहलों को ठीक तरह से देखा भी नहीं। पिता के राजमहल भी उसके लिए अपरिचित थे और अब तो सीधा वन उसे दिखाई दे रहा है। कुन्ती अपने पति के साथ सुन्दर शैयाएं छोड़कर वन में आकर रहने लगी।”

पाण्डु वन में शिकार खेलने चले जाते और कुन्ती तथा माद्री कुटिया को सजाती रहतीं। कभी-कभी दोनों पाण्डु के साथ वन में चली जातीं। वन के अन्य निवासी उन्हें कभी देवता समझते और पूजा भाव से भरकर तरह-तरह के समान भेंट करते।

वैसे धृतराष्ट्र भी इस बात का ध्यान रखते कि पाण्डु वन में जहां-जहां रहें उन्हें उनकी सूचना मिलती रहे। वे इस बात का भी ध्यान रखते कि पाण्डु के पास जीवन चलाने की आवश्यक

वस्तुएं लगातार भेजी जाती रहें। पाण्डु और कुन्ती तथा माद्री निःशंक होकर विचरण करते और इस तरह बीतते हुए समय को कभी पकड़ते हुए और कभी उस ओर ध्यान न करते हुए जीवनयापन करते।

पाण्डु तपस्या में लीन। माद्री कुटिया का काम करती है और कुन्ती को भविष्य की चिंता साकार होकर उभरती है।

क्या किया जाये कि वंश की वृद्धि हो और क्या किया जाये कि कुन्ती स्वयं पुत्रवती हो। कुन्ती का पुत्र के लिए सोचना न अस्वाभाविक था और न असामायिक। फिर भी जब तक पाण्डु को मुनि का शाप प्राप्त नहीं हुआ था तब तक कुन्ती ने कोई चिंता नहीं की, किन्तु मुनि से शापित होने के बाद स्वयं पाण्डु चिंतित रहने लगे और कुन्ती तो इस सोच में बहुत ही अधिक डूब गयी।

पाण्डु से मृग रूपधारी मुनि की हत्या हो गयी। मुनि उस समय काम क्रीड़ा कर रहे थे। पाण्डु को दोहरा आघात हुआ। एक तो मुनि के वध का और दूसरा विचित्र वीर्य के कामभोगी जीवन का स्मरण।

“मनुष्य इतना कामासक्त क्यों होता है? क्यों इस सांसारिक कर्म में इतना विलीन होता है? क्या इससे छुटकारा नहीं मिल सकता?” पाण्डु को अपने जन्म के विषय में याद आया और उन्होंने निश्चय किया कि वे संन्यास लेंगे।

कुन्ती सामने आ गयी और बोली—

“आप अपने शरीर और मन को अत्यंत कठोर तपस्या में लगा सकते हैं। भिक्षा मांगकर जीवन चला सकते हैं। अकेले रह सकते हैं लेकिन कुछ हमारा भी सोचिए। मनुष्य यदि केवल संतान की उत्पत्ति से रहित हो जाये तो सारा जीवन—नहीं त्यागना चाहिए। संतान उत्पत्ति एक धर्म है किन्तु उससे भी बड़ा धर्म जीवन में है। आप उन सारे धर्मों का पालन कीजिए और संन्यास मत लीजिए।”

कुन्ती ने कहा—“संन्यास के अतिरिक्त एक आश्रम वानप्रस्थ भी है। जिसमें आप अपनी पत्नियों के साथ रह सकते हैं। हम दोनों आपकी पत्नी भी कामसुख का परित्याग करके अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए तपस्या करेंगी।”

पाण्डु वन में पहुंच गये। शतश्रृंग पर्वत उस समय धन्य हो गया जब पाण्डु ने वहां अपनी कुटिया बनाई। छोटे-छोटे ऊंचे शिखरों के बीच देवदारों की घनी छांव में पाण्डु की कुटिया बनी। कुन्ती, माद्री और पाण्डु दोनों का ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करती रही। वन में पाण्डु और ऋषियों का परस्पर बहुत वार्तालाप होता। उनमें प्रेम की वृद्धि होती रही और आयु में बड़ा ऋषि पाण्डु को अपना पुत्र मानकर उनकी रक्षा करने लगे।

कुन्ती के लिए वह दिन बहुत दर्शनीय रहा जब अनेक ऋषि एकत्रित होकर ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान करना चाहते थे, किन्तु मन का एक बहुत बड़ा कोना खाली होता हुआ दिखाई दिया। पाण्डु और मुनियों के संवाद में कुन्ती और पाण्डु दोनों को ही पता चला कि संतान न होने से

स्वर्ग का दरवाजा नहीं खुलता और पितृ ऋण भी नहीं चुकाया जा सकता। पाण्डु ने ऋषियों के जाने पर कुन्ती को अपने समीप बुलाया और उससे कहा “संतान न होने की अवस्था में मेरे शरीर के नाश होने के बाद मेरे पितरों का पतन हो जायेगा। तो क्या मेरे पितर श्राद्ध के बिना ही रहेंगे? हे कुन्ती! क्या मैं संतानहीन होने के कारण अच्छे लोकों को प्राप्त नहीं करूंगा?” पाण्डु बहुत धीरे-धीरे कुन्ती के सामने अपना हृदय खोल रहे थे। उन्होंने कहा कि धर्म शास्त्र में छह प्रकार के पुत्र बताये गये हैं—

पहला पुत्र वह है, जो विवाहिता पत्नी से अपने द्वारा उत्पन्न किया गया हो, उसे स्वयं जात कहते हैं। दूसरा प्रणीत कहलाता है, जो अपनी ही पत्नी के गर्भ से किसी उत्तम पुरुष के अनुग्रह से उत्पन्न होता है। तीसरा जो अपनी पुत्री का पुत्र हो, वह भी पुत्र के ही समान माना गया है। चौथे प्रकार के पुत्र की पौनर्भव संज्ञा है, जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्री से उत्पन्न हुआ हो। पांचवें प्रकार के पुत्र की कानीन संज्ञा है (विवाह से पहले ही जिस कन्या को इस शर्त के साथ दिया जाता है कि इसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र मेरा पुत्र समझा जायेगा। उस कन्या के पुत्र को कानीन कहते हैं। जो बहिन का पुत्र (भानजा) है, वह छठा कहा गया है।

कुन्ती का मन अभी भी पाण्डु की बात से सहमत नहीं हो पा रहा था। “यद्यपि स्पष्ट रूप से पाण्डु ने मुझसे कहा कि यदि मेरे स्वयं जात संतान नहीं हो सकती तो प्रणीत संतान का प्रयास करना तो मेरे अधिकार में आता है।”

कुन्ती सोचने लगी और सोचते-सोचते उसे ध्यान आया कि किस तरह पहले समय में पतिव्रता पत्नी भद्रा ने अपने पति के कहने के बाद भी किसी दूसरे से समागम न करने का निश्चय किया था। कुन्ती ने यह कथा पाण्डु को सुनाई। पाण्डु ने बहुत ध्यान से सुनी लेकिन उसके उत्तर में वे बोले—

“तुमने जो भी कहा वह सत्य है किन्तु मैं भी तुम्हें एक धर्म का तत्व बताता हूँ। और इसी कारण मैं तुम्हें इस प्राचीन धर्म के अनुसार संतान उत्पत्ति के लिए कह रहा हूँ। धर्म का एक पक्ष यह भी है कि पति जो कुछ अपनी पत्नी से कहे पत्नी का कर्तव्य है कि वह उसे पूरा करे।”

“तो इस कर्तव्य की धार पर मुझे भी चलना होगा।” कुन्ती ने बहुत स्नेह से अपने पति से कहा और उतने ही स्नेह से पाण्डु ने कुन्ती के सामने अपनी बात रखी—“निर्दोष अंगों वाली शुभलक्षणे। मैं चूँकि पुत्र का मुँह देखने के लिए लालायित हूँ, अतएव तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मस्तक के समीप या अंजलि धारण करता हूँ, जो लाल-लाल अंगुलियों से युक्त तथा कमल दल के समान सुशोभित हैं। सुन्दर केशों वाली प्रिये! तुम मेरे आदेश से तपस्या में बढ□-चढ□ हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण के साथ समागम करके गुणवान पुत्र उत्पन्न करो। सुरोणि! तुम्हारे प्रयत्न से मैं पुत्रवानों की गति प्राप्त करूँ, ऐसी मेरी अभिलाषा है।”

कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा मानकर उनसे दुर्वासा के मंत्र प्राप्त होने की बात कही और यह भी कहा कि मेरे लिए यह कठोर व्रत है और वह केवल आपके कहने से इसका पालन कर रही है। कुन्ती ने विस्तार से बताया कि दुर्वासा ने उसे जो मंत्र दिया था उसके प्रभाव से कोई भी

देवता अपने समान पुत्र का वरदान दे सकता है। कुन्ती ने कहा—“अब यह समय आ गया है कि मैं आपकी आज्ञा मिलने पर यह कार्य सम्पन्न करूँ।”

पाण्डु बोले—“प्रिये! मैं धन्य हूँ, तुमने मुझ पर महान अनुग्रह किया। तुम्हीं मेरे कुल को धारण करने वाली हो। उन महर्षि को नमस्कार है, जिन्होंने तुम्हें ऐसा वर दिया। धर्मज्ञ! अधर्म से प्रजा का पालन नहीं हो सकता। इसलिये वरारोहे। तुम आज ही विधिपूर्वक इसके लिये प्रयत्न करो। शुभे! सबसे पहले धर्म का आह्वान करो, क्योंकि वे ही सम्पूर्ण लोकों में धर्मात्मा हैं।”

“इस प्रकार करने पर हमारा धर्म कभी किसी तरह अधर्म से संयुक्त नहीं हो सकता। वरारोहे! लोक भी आपको साक्षात् धर्म का स्वरूप मानता है। धर्म से उत्पन्न होनेवाला पुत्र कुरुवंशियों में सबसे अधिक धर्मात्मा होगा। इसमें संशय नहीं है। धर्म के द्वारा दिया हुआ जो पुत्र होगा, उसका मन अधर्म में नहीं लगेगा। अतः शूचिस्मिते। तुम मन और इन्द्रियों को संयम में रखकर धर्म को भी सामने रखते हुए उपचार और अभिचार के द्वारा धर्म देवता का आह्वान करो।

अपने पति पाण्डु के यों कहने पर नारियों में श्रेष्ठ कुन्ती ने तथास्तु कहकर उन्हें प्रणाम किया और आज्ञा लेकर उनकी परिक्रमा की।

जब गांधारी को गर्भ धारण किये एक वर्ष बीत गया, उस समय कुन्ती ने गर्भ धारण के लिए अच्युतस्वरूप भगवान धर्म का आह्वान किया।

देवी कुन्ती ने बड़की उतावली के साथ धर्म देवता के लिये पूजा के उपहार अर्पित किये। तत्पश्चात् पूर्वकाल में महर्षि दुर्वासा ने जो मंत्र दिया था, उसका विधिपूर्वक जप किया।

तंत्र मंत्र बल से आकृष्ट हो भगवान धर्म सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर बैठकर उस स्थान पर आये, जहां कुन्ती देवी जप में लगी हुई थी।

तब धर्म ने हंसकर कहा—“कुन्ती! बोलो, तुम्हें क्या दूँ?” धर्म के द्वारा हास्यपूर्वक इस प्रकार पूछने पर कुन्ती बोली—“मुझे पुत्र दीजिए।”

तदनन्तर योगमूर्ति धारण किये हुये धर्म के साथ समागम करके सुन्दरांगी कुन्ती ने एक ऐसा पुत्र प्राप्त किया, जो समस्त प्राणियों का हित करने वाला था।

तदनन्तर जब चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर थे, सूर्य तुला राशि पर विराजमान थे, शुक्ल पक्ष की पूर्णा नाम वाली पंचमी तिथि थी और अत्यन्त श्रेष्ठ अभिजित नामक आठवां मुहूर्त विद्यमान था, उस समय कुन्ती देवी ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया, जो महान यशस्वी था। उस पुत्र के जन्म लेते ही आकाशवाणी हुई—

“यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओं में अग्रगण्य होगा और इस पृथ्वी पर पराक्रमी एवं सत्यवादी राजा होगा। पाण्डु का यह प्रथम पुत्र युधिष्ठिर नाम से विख्यात हो तीनों लोकों में प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करेगा। यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा।”

उस धर्मात्मा पुत्र को पाकर राजा पाण्डु ने पुनः कुन्ती से कहा—

“प्रिये! क्षत्रिय को बल से भी बड़ा कहा गया है। अतः एक ऐसे पुत्र का वरण करो, जो बल में सबसे श्रेष्ठ हो। जैसे अश्वमेध सब यज्ञों में श्रेष्ठ है, सूर्यदेव सम्पूर्ण प्रकाश करने वालों में प्रधान हैं और ब्राह्मण मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार वासुदेव बल में सबसे बड़ा-चढ़ाकर हैं। अतः सुन्दरी अब की बार तुम पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से समस्त प्राणियों द्वारा प्रशंसित देव श्रेष्ठ वायु का विधिपूर्वक आह्वान करो। वे हम लोगों के लिये जो पुत्र देंगे, वह मनुष्यों में सबसे अधिक प्राणशक्ति से सम्पन्न और बलवान होगा।”

स्वामी के इस प्रकार कहने पर कुन्ती ने तब वायुदेव का आह्वान किया।

तब महाबली वायु मृग पर आरुढ़ हो कुन्ती के पास आये और यों बोले—“कुन्ती! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो, वह कहो। मैं तुम्हें क्या दूँ?”

कुन्ती ने लज्जित होकर मुस्कराते हुए कहा—“सुरश्रेष्ठ! मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो महाबली और विशालकाय होने के साथ ही सबके घमण्ड को चूर करने वाला हो।”

वायुदेव से भयंकर पराक्रमी महाबाहु भीम का जन्म हुआ। उस महाबली पुत्र को लक्ष्य करके आकाशवाणी ने कहा—“यह कुमार समस्त बलवानों में श्रेष्ठ है।” भीमसेन के जन्म लेते ही एक अद्भुत घटना यह हुई कि अपनी माता की गोद से गिरने पर उन्होंने अपने अंगों से एक पर्वत की चट्टान को चूर-चूर कर दिया। बात यह थी कि यदुकुलनन्दिनी कुन्ती प्रसव के दसवें दिन पुत्र को गोद में लिये उसके साथ एक सुन्दर सरोवर के निकट गयी और स्नान करके लौटकर देवताओं की पूजा करने के लिये कुटिया से बाहर निकली। भरतनन्दन पर्वत के समीप होकर जा रही थी इतने में ही उसको मार डालने की इच्छा से एक बहुत बड़ा व्याघ्र उस पर्वत की कन्दरा से बाहर निकल आया। देवताओं के समान पराक्रमी कुरुश्रेष्ठ पाण्डु ने उस व्याघ्र को दौड़ाकर आते देख धनुष खींच लिया और तीन बाण मारकर उसे विदीर्ण कर दिया। उस समय वह अपनी विकट गर्जना से पर्वत की सारी गुफा को प्रतिध्वनित कर रहा था। कुन्ती बाघ के भय से सहसा उछल पड़ी।”

उस समय उसे इस बात का ध्यान नहीं रहा कि उसकी गोद में भीमसेन है। उतावली में वह वज्र के समान शरीर वाला कुमार पर्वत पर गिर पड़ा।

गिरते समय उसने अपने अंगों से उस पर्वत की शिला को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। पत्थर की चट्टान को चूर-चूर हुआ देख महाराज पाण्डु बड़ा आश्चर्य में पड़ गये।

जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर विराजमान थे, बृहस्पति सिंह लग्न में सुशोभित थे, सूर्यदेव दोपहर के समय आकाश के मध्य भाग में तप रहे थे, उस समय पुण्यमयी त्रयोदशी तिथि के मैत्र मुहूर्त में कुन्ती देवी ने अविचल शक्तिवान भीमसेन को जन्म दिया था। भरतश्रेष्ठ भूपाल! जिस दिन भीमसेन का जन्म हुआ था, उसी दिन हस्तिनापुर में दुर्योधन की उत्पत्ति हुई।

भीमसेन के जन्म लेने पर पाण्डु ने फिर इस प्रकार विचार किया। मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे सब लोगों से श्रेष्ठ उत्तम पुत्र प्राप्त हो।

यह संसार दैव तथा पुरुषार्थ पर अवलम्बित है। इसमें दैव तभी सुलभ होता है, जब समय पर उद्योग किया जाये।

मैंने सुना है कि देवराज इन्द्र ही सब देवताओं में प्रधान हैं, उनमें अथाह बल और उत्साह है। वे बड़-पराक्रमी एवं अपार तेजस्वी हैं। मैं तपस्या द्वारा उन्हीं को सन्तुष्ट करके महाबली पुत्र प्राप्त करूंगा। वे मुझे जो पुत्र देंगे, यह निश्चय ही सबसे श्रेष्ठ होगा और संग्राम में अपना सामना करने वाले मनुष्यों तथा मनुष्येतर प्राणियों को भी मारने में समर्थ होगा। अतः मैं मन, वाणी और क्रिया द्वारा बड़ी भारी तपस्या करूंगा।

ऐसा निश्चय करके कुरुनन्दन महाराज पाण्डु ने महर्षियों से सलाह लेकर कुन्ती को शुभदायक सांवत्सर व्रत का उपदेश दिया।

वे महाबाहु धर्मात्मा पाण्डु स्वयं देवताओं के ईश्वर इन्द्र देव की आराधना करने के लिये चित्तवृत्तियों को अत्यन्त एकाग्र करके एक पैर से खड़-हो सूर्य के साथ-साथ उग्र तप करने लगे अर्थात् सूर्योदय होने के समय एक पैर से खड़-होते और सूर्यास्त तक उसी रूप में खड़-रहते।

इस तरह दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर इन्द्रदेव उन पर प्रसन्न हो उनके समीप आये और इस प्रकार बोले—

“राजन! मैं तुम्हें ऐसा पुत्र दूंगा, जो तीनों लोकों में विख्यात होगा। वह ब्राह्मणों, गौओं तथा सुहृदों के अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति करने वाला और शत्रुओं को शोक देने वाला तथा समस्त बंधु-बांधवों को आनन्दित करने वाला होगा। मैं तुम्हें सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करने वाला सर्वश्रेष्ठ पुत्र प्रदान करूंगा।”

महात्मा इन्द्र के यों कहने पर धर्मात्मा कुरुनन्दन महाराज पाण्डु बड़ी प्रसन्न हुए और देवराज के वचनों का स्मरण करते हुए कुन्ती देवी से बोले—

“कल्याणि! तुम्हारे व्रत का भावी परिणाम मंगलमय है। देवताओं के स्वामी इन्द्र हम लोगों पर संतुष्ट हैं और तुम्हें तुम्हारे संकल्प के अनुसार श्रेष्ठ पुत्र देना चाहते हैं। वह अलौकिक कर्म करने वाला, यशस्वी, शत्रु दमन, नीतिज्ञ, महामना, सूर्य के समान तेजस्वी, दुर्घर्ष, कर्मठ तथा देखने में अत्यन्त अब्धुत होगा।”

“सुश्रोणि! अब ऐसे पुत्र को जन्म दो, जो क्षत्रियोचित तेज का भंडार हो। पवित्र मुस्कान वाली कुन्ती! मैंने देवेन्द्र की कृपा प्राप्त कर ली है। अब तुम उन्हीं का आह्वान करो।”

महाराज पाण्डु के यों कहने पर यशस्विनी कुन्ती ने इन्द्र का आह्वान किया। तदनन्तर देवराज इन्द्र आये और उन्होंने अर्जुन को जन्म दिया। इस प्रकार पाण्डु की कामना पूर्ण की।

वह फाल्गुन मास में दिन के समय पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों के संधिकाल में उत्पन्न हुआ। फाल्गुन मास और फाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेने के कारण उस बालक का नाम फाल्गुन हुआ।

कुमार अर्जुन के जन्म लेते ही अत्यन्त गम्भीर नाद में समूचे आकाश को गूँजाती हुई आकाशवाणी ने पवित्र मुस्कान वाली कुन्ती देवी को सम्बोधित करके समस्त प्राणियों और आश्रमवासियों के सुनते हुए अत्यन्त स्पष्ट भाषा में इस प्रकार कहा—

“कुन्तिभोज कुमारी! यह बालक कीर्तवीर्य अर्जुन के समान तेजस्वी, भगवान शिव के समान पराक्रमी और देवराज इन्द्र के समान अजेय होकर तुम्हारे यश का विस्तार करेगा। जैसे भगवान विष्णु ने वामन रूप में प्रकट होकर देवमाता अदिति के हर्ष को बढ़ाया था, उसी प्रकार यह विष्णु तुम्हारे अर्जुन तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ायेगा।”

“तुम्हारा यह वीर पुत्र मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशि तथा करुष नामक देशों को वश में करके कुरुवंश की लक्ष्मी का पालन करेगा।”

“वीर अर्जुन उत्तर दिशा में जाकर वहां के राजाओं को युद्ध में जीत कर असंख्य धन-रत्नों की राशि ले आयेगा। इसके बाहुबल से खाण्डव वन में अग्निदेव समस्त प्राणियों के मद का आवंटन करके पूर्ण तृप्ति लाभ करेंगे।”

“यह महाबली श्रेष्ठ वीर बालक समस्त क्षत्रिय समूह का नायक होगा और युद्ध में भूमिपालों को जीतकर भाइयों के साथ तीन अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान करेगा। यह तुम्हें अत्यन्त सुख देगा।”

“कुन्ती! यह परशुराम के समान वीर योद्धा, भगवान विष्णु के समान पराक्रमी, बलवानों में श्रेष्ठ और महान यशस्वी होगा।”

“यह युद्ध में देवाधिदेव भगवान शंकर को संतुष्ट करेगा और संतुष्ट हुए उन महेश्वर से पाशुपत नामक अस्त्र प्राप्त करेगा। निवातकवच नामक दैत्य देवताओं से सदा द्वेष रखते हैं। तुम्हारा यह महाबाहु पुत्र इन्द्र की आज्ञा से उन सब दैत्यों का संहार कर डालेगा।”

“तथा पुरुषों में श्रेष्ठ यह अर्जुन सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करेगा और अपनी खोयी हुई सम्पत्ति को पुनः वापस ले आयेगा।”

कुन्ती ने सौरी में से ही यह अत्यन्त अद्भुत बात सुनी। उच्च स्वर में उच्चारित वह आकाशवाणी सुनकर शत शृंग निवासी तपस्वी मुनियों तथा विमानों पर स्थित इन्द्र आदि देव समूहों को बढ़ाई हर्ष हुआ।

तदनन्तर आकाश में फूलों की वर्षा के साथ देव-दुन्दुभियों का तुमुल नाद बढ़ा जोर से गूँज उठा।

फिर झुंड के झुंड देवता वहां एकत्र होकर अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। कद्रू के पुत्र नाग, विनता के पुत्र गरुड, पक्षी, गंधर्व, अप्सराएं, प्रजापति सप्तर्षिगण—भारद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ तथा जो नक्षत्र के रूप में सूर्यास्त होने के पश्चात उदित होते हैं वे भगवान अस्त्रि भी वहां आये।

मरीचि और अगिरा, पुलत्य, पुलह, ऋतु एवं प्रजापति दक्ष, गंधर्व तथा अप्सराएं भी आयीं।

उन सबने दिव्य हार और दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। वे सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित थे। अप्सराओं का पूरा दल वहां जुट गया था। वे सभी अर्जुन के गुण गाने और नृत्य करने लगीं।

महर्षि भी वहां सब ओर खड्ड होकर मांगलिक मंत्रों का जप करने लगे। गंधर्वों के साथ श्रीमान तुम्बुरु ने मधुर स्वर से गीत गाना प्रारम्भ किया।

भीमसेन तथा उग्रसेन, ऊर्णायु और अनध, गोपति एवं धृतराष्ट्र, सूर्य वर्चा तथा आठवें युगप, तृणम, काष्ठिण नन्दि एवं चित्ररथ, तैरहवें शाली शिरा और चौदहवें पर्जन्य, पन्द्रहवें कलि और सोलहवें नारद, ऋत्वा और बृहत्वा, बृहक एवं महामना कराल, ब्रह्मचारी तथा विख्यात गुणवान सुवर्ण विश्वासु एवं सुमन्यु, सुचन्द्र और शरु तथा गीत माधुर्य से सम्पन्न सुविख्यात हाहा और हूहू—ये सब देख गन्धर्व वहां पधारे थे।

इसी प्रकार समस्त आभूषणों से विभूषित बड्ड-बड्ड नेत्रों वाली परम सौभाग्यशाली अप्सराएं भी हर्षोल्लास में भरकर वहां नृत्य करने लगीं।

अप्सराओं में अनूचाना और अनवद्या, गुणमुख्या एवं गुणवरा, अद्रिका तथा सोमा, मिश्रकेशी और अलम्बुषा, मरीचि और शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता और सुबाहु, सुप्रिया एवं वपु, पुण्डरीका एवं सुगन्धा, सुरसा और प्रमाथिनी, काम्या तथा शारद्वती आदि। ये झुंड की झुंड अप्सराएं नाचने लगीं। इनमें मेनका, सहजन्त्या, कर्णिका और पुंजिकस्थला, ऋतुस्थला एवं घृताची, विश्वाची और पूर्वचित्ति, उम्लोचा और प्रम्लोचा—ये दस विख्यात अप्सराओं ने नृत्य किया।

इन्हीं प्रधान अप्सराओं की श्रेणी में ग्यारहवीं उर्वशी है। ये सभी विशाल नेत्रों वाली सुन्दरियां वहां गीत गाने लगीं। धाता और अर्यमा मित्र और वरुण, अंश और भग, इन्द्र, विवस्वान और पूषा, त्वष्टा एवं सविता, पर्जन्य तथा विष्णु—ये बारह आदित्य माने गये हैं। ये सभी पाण्डुनन्दन अर्जुन का महत्त्व बढाते हुए आकाश में खड्ड थे।

शत्रुदमन महाराज! मृगव्याध और सर्प, महायशस्वी निर्ऋति एवं अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य और पिनाकी, दहन तथा ईश्वर, कपालो एवं स्थाणु तथा भगवान भग—ये ग्यारह रुद्र भी वहां आकाश में आकर खड्ड थे।

दोनों अश्विनी कुमार तथा आठों वसु, महाबली मरुद्रगण एवं विश्वे-देवगण तथा साध्यगण वहां सब ओर विद्यमान थे।

कर्कोटक सर्प तथा वासुकि नाग कश्यप और कुण्ड, महानाग और लक्षक—ये तथा और भी बहुत से महाबली, महाक्रोधी और तपस्वी नाग वहां आकर खड्ड थे।

ताव्रष्य और अरिष्टनेमि गरुड एवं असित ध्वज, अरुण तथा आरुणि विनता के ये पुत्र भी उस उत्सव में उपस्थित थे।

वे सब देवगण विमान और पर्वत के शिखर पर खड्ड थे। उन्हें तपः सिद्ध महर्षि ही देख पाते

थे, दूसरे लोग नहीं।

यह महान आश्चर्य देखकर वे श्रेष्ठ मुनिगण बड़बुद विस्मय में पड़बुद। तब से पांडवों के प्रति उनमें अधिक प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया। तदनन्तर महायशस्वी राजा पाण्डु पुत्र लोभ से आकृष्ट हो अपनी धर्मपत्नी कुन्ती से फिर कुछ कहना चाहते थे, किंतु कुन्ती उन्हें रोकती हुई बोली—

“आर्य पुत्र! आपत्तिकाल में भी तीन से अधिक चौथी संतान उत्पन्न करने की आज्ञा शास्त्रों ने नहीं दी है। इस विधि के द्वारा तीन से अधिक चौथी संतान चाहने वाली स्त्री स्वैरिणी होती और पांचवें पुत्र के उत्पन्न होने पर जोवह कुलटा समझी जाती है।”

“विद्वान्! आप धर्म को जानते हुए भी प्रमाद से कहने वाले के समान धर्म का लोप करके अब फिर मुझे संतानोत्पत्ति के लिए क्यों प्रेरित कर रहे हैं?”

पाण्डु ने कहा—“प्रिये! वास्तव में धर्मशास्त्र का ऐसा ही मत है। तुम जो कहती हो, वह ठीक है।” इसके बाद कुन्ती धैर्यपूर्वक अपने पुत्रों का पालन-पोषण करती रही। राजकुमारों के आने से आश्रम में और भी अधिक आनंद का अनुभव किया जाने लगा।

♪ ♪ ♪

वन की सुषमा दुग्नी-चौगुनी होकर प्रतिदिन की तरह फैल रही थी, लेकिन कुन्ती को आज यह वन का सौन्दर्य और भी अधिक भा रहा था। क्या चाहिए एक स्त्री को-प्रेम और सम्मान करने वाला पति। सुन्दर और पुष्ट संतान। कुन्ती अपने भाग्य को विशेष धन्यवाद देने लगी क्योंकि यह भाग्य का ही चमत्कार था जिसके कारण वह पुत्रवती हुई।

उसे याद आता है दुर्वासा का मन्त्र और मन्त्र का प्रथम प्रयोग। लेकिन तीनों पुत्रों को देखकर पहले प्रयोग की यातना कम रही है। फिर भी वह कसक मिटाए नहीं मिटती।

कुन्ती अपने पुत्रों की शक्ति पर विश्वास करते हुए भी एक मां की तरह उनकी चिन्ता करती हुई पालन-पोषण करती रही। कुन्ती का मन हुआ कि एक बार फिर सूर्य को निमंत्रण दे और उनसे कुछ बात करे। सूर्य देख भी तो रहे होंगे कि उनके बाद मैंने तीन पुत्रों को जन्म दिया।

कुन्ती का मन अकस्मात् हर्ष के उद्वेल से अवसाद में परिवर्तित हो गया। वह सोचने लगी कि देव शक्ति मेरे इन पुत्रों की अपने आप रक्षा करेगी, किन्तु यह क्या उसे सामने से आती हुई माद्री दिखाई दी।

माद्री ने कुन्ती के चरण छुए क्योंकि वह मन में अपने को बड़बुदी समझते हुए भी हमेशा कुन्ती से छोटी बनी रही। माद्री को देखकर कुन्ती के मन में यह विचार उठा कि क्यों न माद्री को भी संतान हो जाए।

कुन्ती ने माद्री को अपने गले से लगाया और कहा, “तुम पुत्रवती होना चाहती हो?”

“ऐसी कौन-सी स्त्री होगी जो पुत्रवती न होना चाहे।”

“तो फिर मैं तुम्हारे लिए प्रयास करूंगी। क्योंकि अपना सुख देखना उतनी बड़ी बात नहीं होती जितनी दूसरे के सुख को बनाना और उसे दान कर देना।”

कुन्ती ने एक बहुत सुन्दर-सा आसन बिछाया और उस पर माद्री को बिठा दिया। कुन्ती ने कहा—“तुम अपने मन में किसी देवता का चिंतन करो और मैं तुम्हारे लिए मन्त्र पढ़ती हूँ।”

“किस देवता का चिंतन करूँ?” माद्री ने लजाते हुए पूछा।

“किसी भी अपने मन के देवता का चिंतन करो। तुम जिस देवता का चिंतन करोगी उसी के समान तेजस्वी संतान उत्पन्न होगी।”

माद्री ने कुन्ती के आग्रह पर अश्वनी कुमार का चिंतन किया। चिंतन करते समय वह यह भूल गई कि अश्वनी कुमार एक देवता का नाम नहीं है वह देवता युगल है इसलिए जब मन्त्र के आवाहन से अश्वनी कुमार आये तो उनके सहवास से नकुल और सहदेव (जो बाद में नाम रखा गया था) उत्पन्न हुए। ये दोनों राजकुमार अश्वनी कुमार से भी अधिक सुन्दर और आकर्षक थे।

वन का वातावरण धीरे-धीरे बहुत सुन्दर, आकर्षक और राग से भर गया था। पुत्रों के नामकरण करने का अवसर था और ऋषि लोग नक्षत्रों के अनुसार नामकरण संस्कार करके बहुत प्रसन्न हुए। बड़का पुत्र का नाम युधिष्ठिर फिर उसके बाद भीम तथा अर्जुन और माद्री के पुत्रों का नाम नकुल और सहदेव रखा गया। प्रत्येक पांडव एक-एक वर्ष के अन्तराल में उत्पन्न हुए थे फिर भी उनके मुख की कान्ति एक संवत्सर के समान थी।

समय बीतता गया। महाराजा पांडु, कुन्ती और माद्री अपनी संतान के साथ प्रसन्नचित्त होकर वन में रह रहे थे। इस बीच राजकुमारों की विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा का अवसर आने पर अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले और पितरों के आराधक महात्मा राजा शुक ने पांडवों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी।

खेल-खेल में किस प्रकार 14-15 वर्ष बीत गये यह न पांडु को पता चला और न कुन्ती को, किन्तु कुन्ती यथासंभव इस बात का ध्यान रखती कि पांडु के मन में कामभाव उत्पन्न न हो। इसलिए वह अपने सौन्दर्य प्रसाधन पर बिलकुल ध्यान नहीं देती और माद्री को तो कम से कम उनके सामने जाने देती।

पुत्रों के साथ रहकर तेजस्वी राजा पांडु ने तपस्या में अधिक समय लगाना प्रारम्भ कर दिया, पर समय अपनी गति से चलता है और उसके बीच-बीच के निर्णय किसी के द्वारा नहीं रोके जा सकते। यही हुआ।

अर्जुन 14 वर्ष के हो चुके थे और इन चौदह वर्षों में अर्जुन ने धनुर्वेद की पूरी शिक्षा प्राप्त कर ली थी। उनसे बड़ा भाई भीम ने गदा चलाने में और युधिष्ठिर ने तोमर फेंकने में कुशलता प्राप्त की। नकुल और सहदेव ने तलवार की शिक्षा प्राप्त की। राजा शुक ने यह जान लिया कि अर्जुन धनुर्वेद का ज्ञाता हो गया है। और इससे आगे इस ज्ञान में वह दिव्य स्तर पर बढ़ता रहेगा तो उन्होंने चमकीला धनुष और नाराच भी उसको दे दिये। अर्जुन अपने गुरु से शस्त्र पाकर प्रसन्न हुए।

अर्जुन का चौदहवां वर्ष और उनकी जन्मतिथि। चारों ओर ऋषियों मुनियों की कतारें। भोज का उत्सव और कुन्ती को ध्यान नहीं रहा कि महाराज पांडु को भी देखना है। वे ब्राह्मणों को भोजन कराने में लग गई। पांडु को न जाने क्या हुआ वे माद्री को लेकर वन में चले गये। उस समय वन में खिले हुए पलाश, तिलक, आम और चम्पा के फल फूलों की गंध उनके काम भाव में वृद्धि करने लगी। माद्री उनके पीछे-पीछे आ रही थी तब पांडु ने काम के वशीभूत होकर माद्री का स्पर्श किया। माद्री ने उनसे छूटने का बहुत प्रयास किया लेकिन पांडु पर काम का वेग था

और फिर शाप के वशीभूत होकर पांडु को मृत्यु प्राप्त हुई।

कुन्ती ने अपना सिर पीट लिया। वह अपने बालकों को कुटिया में छोड़कर पांडु के शव के पास आई। उसने माद्री को भला-बुरा भी कहा लेकिन अब क्या हो सकता था। केवल यही हुआ कि माद्री पांडु के साथ सती हो गई।

कुन्ती का सौभाग्य दुर्भाग्य में बदल गया, लेकिन कुन्ती केवल पत्नी नहीं थी वह मां भी थी। पांडु की चिता के सामने कुन्ती ने मन में प्रतिज्ञा की कि यदि मैंने अपने जीवन में जो कुछ किया वह धर्म के अनुकूल था तो हे प्रभु! मुझे शक्ति देना मैं इन पांचों पुत्रों को सर्वदा एक रख सकूँ। इनमें कभी संघर्ष न हो। धन-सम्पत्ति, नारी कोई भी इनमें भेदभाव उत्पन्न न कर सके।

आकाश में बादल घिर आये थे मानो इन्द्र कुन्ती की प्रतिज्ञा पर तथास्तु कह रहे हों।

हवा तेज चलने लगी थी मानो वायु कुन्ती का साथ देने का वचन दे रही हो।

प्रकृति में सब कुछ समय पर हो रहा था मानों धर्मराज कुन्ती के उत्साह में और कर्तव्यनिष्ठा में सहयोग देने का वचन दे रहे हों।

चारों तरफ सुगन्ध फैल रही थी लगता था अश्विनी कुमार ने कुन्ती की सुरक्षा का वचन दिया हो।

प्रकृति के बनते-बिगड़ते रूप को देखकर कुन्ती ने सोचा, “मैं अब अपने पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर जाऊंगी जिन्हें वन में रहने का चाव था वे तो चले गये। अब मैं अपने पुत्रों को उस वैभव से अलग क्यों रखूँ जिस वैभव के वे अधिकारी हैं।”

पितामह भीष्म के संदेश भी आते रहते लेकिन काफी समय से कोई समाचार नहीं आया।

कुन्ती सोच ही रही थी कि वहां निवास करने वाले ऋषियों ने कुन्ती के समीप आकर उनसे कहा—“हे महाभागा! महाराजा पांडु अपने पुत्रों को तुम्हारे पास छोड़कर चले गये यदि तुम चाहो तो तुम्हें हस्तिनापुर पहुंचा दिया जाये।”

कुन्ती मन से यही चाहती थी उसने सहर्ष ऋषियों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर उसके मन में क्षण-भर के लिए यह भी आया कि इन ऋषियों के साक्ष्य से ही इन पुत्रों की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जायेगी।

कुन्ती ऋषियों के साथ अपने पुत्रों को लेकर चलने के लिए तैयार हो गई। उन्होंने बहुत थोड़ा-सा सामान अपने साथ लिया और चल दिये।

कुन्ती और हस्तिनापुर

हस्तिनापुर प्रतिदिन की तरह हर्ष और उल्लास में डूबा हुआ था। यद्यपि राजभवन में गांधारी सहित प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का क्षोभ रहता था कि वन में रहते हुए भी कुन्ती के यहां पहले संतान उत्पन्न हो गई और इसलिए सम्भवतः भविष्य के नीति निर्धारण में कुछ समस्या आये।

कुन्ती इन सब बातों से अवगत नहीं थी।

कुन्ती के साथ उसके पांच पुत्र किशोरवय का प्रकाश और मुखमंडल पर देवताओं जैसी कांति—जैसे ही राजकुमारों ने नगर की सीमा में प्रवेश किया वैसे ही नगर का एक-एक वृक्ष पल्लव फूल जगमगा उठर। कुन्ती को छोड़कर आये हुए ऋषि आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे कुन्ती थी तथा कुन्ती के पीछे पांचों पांडव।

हस्तिनापुर की सीमा पर आकर कुन्ती ने पीछे मुड़कर उस लम्बे रास्ते को देखा जिस पर चलकर वह नगर तक आई थी। अपनी माता का अनुकरण करते हुए युधिष्ठिर सहित अन्य भाइयों ने भी पीछे मुड़कर देखा।

“क्या वन को विदा दे रही हैं माताश्री?” युधिष्ठिर ने उत्सुकता से पूछा। तो कुन्ती ने उत्तर दिया—

“नहीं, वन को विदा नहीं दे रही हूँ अपितु यह सोच रही हूँ कि न जाने फिर कब इस सौन्दर्य को आंखों में भर सकूंगी।”

“मैं स्वयं भी यही सोच रहा था।” युधिष्ठिर ने कहा।

एकाएक भीम तमतमा कर बोले, “आप दोनों को तो वन बहुत अधिक प्रिय है। पिताश्री को भी वन इतना प्रिय था तो फिर हम वन से आये ही क्यों?” कुन्ती मुस्कराई और उसने कहा—

“छोटी-छोटी बातों पर क्रोध करना तुम्हारा स्वभाव बन गया है। वन हमें इसलिए प्रिय है कि वहां मनुष्य की तामसिक वृत्तियां नहीं जागतीं। वन-वन नहीं है वह आश्रम है और आश्रम में हम राग द्वेष से रहित रहते हैं।” नगर में आते-आते इस प्रकार के संवाद से ऋषियों ने पीछे मुड़कर देखा तो उनमें से एक बोले—

“नगर की संस्कृति आश्रम की संस्कृति से भिन्न होती है। फिर भी तुम राजकुमार हो इसलिए तुम्हें तो नगर में रहना ही होगा। हम तो केवल इतना कहते हैं कि नगर में रहकर आश्रम का पूरी तरह से संरक्षण करना। कुन्ती ने ऋषियों के आगे मस्तक झुका दिया और उनको देखकर पांचों पांडवों ने भी वैसा ही किया।”

हस्तिनापुर नगर का बहुत विराट द्वार द्वारपालों से सजा हुआ और पांचों पांडव अपने रक्षक ऋषियों के साथ खड़े। द्वारपालों ने राजसीय अनुशासन में इन राजकुमार मुनियों का अभिवादन किया। नगर का वरधमान द्वार क्षण-भर में खिल उठा।

“महाराजा धृतराष्ट्र को हमारे आने की सूचना दो।” तपस्वी मुनियों ने द्वारपाल से कहा।

द्वारपाल ने तुरन्त सभा में जाकर मुनियों को समाचार दे दिया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और क्षण-भर में ही सहस्रों पुर्वासी मुनियों के दर्शनों के लिए वहां आ गये।

जिन ब्राह्मणों की स्त्रियां कभी नगर से बाहर नहीं आई थीं और जिन क्षत्रिय स्त्रियों ने घर में ही निवास किया था वे सब नगर से निकलने लगीं और मुनियों के दर्शन करते हुए बहुत प्रसन्न हुईं।

एकत्रित प्रजा इधर-उधर छंटने लगी क्योंकि अश्वारोहियों ने भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुर के आगमन की सूचना दी।

देवी सत्यवती, कौशला और गांधारी भी पांडवों का स्वागत करने के लिए आये।

दुर्योधन और उसके भाई विचित्र वेशभूषा पहनकर ब्राह्मणों और ऋषियों के दर्शन के लिए आये।

सारा समुदाय एकत्रित हो गया। तब ऋषियों में से एक ऋषि उठे और कुन्ती को आगे करके उन्होंने पांडु पुत्रों का परिचय दिया।

ऋषियों ने भीष्म जी से बताया कि युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन धर्मराज वायु और इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए और अश्विनी कुमारों के अंश से ये नकुल और सहदेव।

पांडवों का परिचय देते-देते मुनियों का गला भर आया जब उन्होंने बताया कि पांडु किस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हुए।

ऋषियों ने माद्री के सती होने का वृत्तांत भी कह सुनाया और कहा कि अब आप इन पुत्रों को ग्रहण करें। यह कहते ही एक ऋषि ने एक बर्तन भीष्म के हाथों में दिया और कहा कि यह पांडु और माद्री की अस्थियां हैं अब आप इनका पिण्डदान कीजिए।

कुन्ती देख रही थी कि किस प्रकार भीष्म कृपाचारी आदि ने पांडवों का स्वागत किया और किस तरह दुर्योधन आदि ने ईर्ष्या अनुभव की। कुन्ती ने गांधारी के समीप आकर पूरे समर्पण के भाव से नमस्कार किया और उसे अनुभव हुआ कि गांधारी के साधुवाद में कोई छल नहीं था।

वृक्ष के नीचे कुटिया में कुशा पर सोने वाले पांडव राजभवन में सुख शैया पर सोने लगे किन्तु कुन्ती ने अपनी शैया का स्वरूप पहले जैसा ही रखा। कुन्ती किसी भी प्रकार अपने मन और ऐश्वर्य का समन्वय नहीं करना चाहती थी। उसका अधिकतम समय अपने पुत्रों की देख-रेख में ही व्यतीत होता और वे कभी-कभी बहुत गहराई से उस अपने ही राज्य में अपने पराए होने का अनुभव भी करती।

कुन्ती को बार-बार यह लगता जैसे वह यहां आरोपित हो गई है। यह हस्तिनापुर वही है जहां वह श्रृंगार करके वधु बनकर आई थी।

यह हस्तिनापुर वही है जहां से अपने पति के कहने पर वह सब कुछ छोड़कर वन में गई थी।

यह हस्तिनापुर वही है जहां वह सब कुछ अपना होते हुए भी अपने न होने के बीच में रह रही है।

कुन्ती को दंश एक नहीं अनेक हैं लेकिन वह जानती है कि उसे अपने पांचों पुत्रों के लिए एक केन्द्रीय धुरी के रूप में बने रहना है।

यह प्रकृति अत्यंत विचित्र है। वह किसी को किसलिए और किसी को किसी और कारणों के

कारण उत्पन्न करती है। बार-बार क्यों चित्र की तरह से आ जाता है जीवन। उस जीवन में कहीं पर दुर्वासा की सेवा करती हुई वह स्वयं होती है, कहीं पर पिछले द्वार से प्रवेश करते हुए सूर्य।

सूर्य के स्पर्श से प्रकम्पन अनुभव करती हुई कुन्ती।

सूर्य के समागम के बाद अपने पुत्र को गंगा की धार पर बहाती हुई कुन्ती।

अपने पति से भोग-विलास के आधार को अपने से अलग करती हुई कुन्ती और यह हस्तिनापुर है कि उसकी इन सब बातों का उत्तर एक भीतर ही भीतर राख में छुपी रह गई चिंगारी के समान कभी भी पैर जला देता है।

आकाश में सूर्य अभी पूरी तरह दिखाई नहीं दिये थे कि कुन्ती ने अपनी विश्वसनीय दासी को भेजकर कर्ण के विषय में पता करवाने के बाद युधिष्ठिर को बुलाया।

“मुझे याद किया है माताश्री?” युधिष्ठिर बोले।

“हां तात, मन बहुत व्याकुल हो रहा है। सोचा तुमसे कुछ बात कर लूं।”

“क्या बात है अम्बे? स्वास्थ्य तो ठीक है।”

“हां, स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक है पर मन व्याकुल है।”

“पांच पुत्रों की मां और मन व्याकुल! तो मैं यह कह सकता कि बहुत भावुक होकर आप पिताश्री को याद कर रही होंगी।”

“नहीं रे, ऐसा कुछ नहीं। तुम्हारे पिता अपनी कान्ति तुम पांचों में बांट गये हैं। जब तुम पांचों मेरे सामने होते हो तो लगता है वे सर्वोच्च होकर मुझे आशीर्वाद और साहस दे रहे हैं।”

“हम पांचों में वही एक कान्ति है। हम कभी अलग नहीं होंगे।”

“तुम्हें कैसे पता चला कि मैं तुमसे यह बात कहने जा रही हूं।”

“आपकी गोदी में पला हूं। आपकी दृष्टि से आपका आदेश और मन की बात जान लेने का अभ्यासी हो गया हूं।”

“तो मुझे चिंता नहीं करनी चाहिए?” कुन्ती ने पूछा।

“नहीं, बिल्कुल नहीं। जितना विश्वास आपको अपने आप पर है। आप चाहें तो उससे अधिक विश्वास हम पर कर सकती हैं।”

युधिष्ठिर और कुन्ती बात कर ही रहे थे कि दौड़ते हुए अर्जुन आए और मुस्कराते हुए भाई और माता से बोले, “मां, भ्राताश्री—आपने भाई भीम को देखा है क्या?”

“नहीं...क्या हुआ भीम को? कहां है वह?” घबराकर कुन्ती बोली।

“घबराओ मत माताश्री, उनकी तो आदत ही है इधर-उधर चले जाने की। लेकिन हम लोगों ने वन में बगीचों में कई स्थानों पर देखा तो वे मिले नहीं इसलिए चिंता हो गई।”

अर्जुन की मुस्कराहट पर युधिष्ठिर ने ध्यान देते हुए कहा, “तुम मुस्करा क्यों रहे हो?”

“भ्राताश्री इतने बड़े व्यक्ति को खोजने की भावना से मुस्करा रहा हूं अब आप ही कहिए उन्हें खोजना ठीक है या नहीं।”

“सामान्य परिस्थितियां होतीं तो कोई बात नहीं थी। लेकिन जब राजकुल में ही विरोधी तत्त्व बैठे हैं तो चिंता होनी स्वाभाविक है। कुन्ती अपने स्थान से हटकर भीम को खोजने के लिए जाने लगी।”

युधिष्ठिर ने माता को रोका और कहा कि आप चिंता मत कीजिए। थोड़े समय बाद ही विदुर भी वहां आ गये। विदुर को देखकर कुन्ती ने कहा कि युधिष्ठिर तुम अपने छोटे-भाइयों के साथ भीम को खोजने का प्रयास करो। फिर वह विदुर जी को सम्बोधित करते हुए बोली कि आपको तो पता ही है कि मेरा पुत्र भीम दुर्योधन की आंखों में हमेशा शूल की तरह गड़गड़ाता है, कहीं उसने उसे मरवा न दिया हो।

कुन्ती की बात सुनकर विदुर बोले, “ऐसा मत कहो। इस प्रकार के अपशब्द मुंह से नहीं निकालते। वह यहीं कहीं चला गया होगा। तुम्हें मालूम है तुम्हारे पुत्र दीर्घजीवी हैं और भीमसेन तो अपनी शारीरिक शक्ति में सर्वोपरि है। उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।”

कुन्ती अपने कक्ष में शांत बैठी थी लेकिन उसका मन व्याकुल था, पर यह व्याकुल मन कब तक व्याकुल रहता कि अनायास भीम उनके सामने आकर खड़बड़ा हो गये। भीम ने माता को अपने नागलोक की यात्रा का वृत्तांत सुनाया और अपने मामा के यहां से वह शक्ति रस पीने के बाद कितना शक्तिशाली होकर आया है बताने के लिए भीम माता से बोले—

“मेरी शक्ति देखना चाहती हो तो मैं इस महल के इस खम्भे को गिरा दूं।”

पुत्र के आने से हर्षित कुन्ती बोली—

“इस स्तम्भ को गिराओगे तो क्या महल सुरक्षित रहेगा। इसकी छत गिर नहीं जायेगी।”

“तो मैं छत को अपने हाथों से रोक लूंगा।”

माता और पुत्र इस संवाद से हंसने लगे।

पुत्र के आने की प्रसन्नता और दूसरी प्रसन्नता यह कि वह शक्तिशाली होकर लौटा है, कुन्ती क्षण-भर के लिए अपने आप से बात करने लगी। “मुझे लगता है ये दैवी अंश नये युग का सूत्रपात करेंगे।”

कुन्ती ने भीम को युधिष्ठिर के पास भेज दिया और वहां पांचों भाइयों ने मिलकर अपने आपमें माता की बात को दोहराया।

जब पांचों भाई एक स्थान पर एकत्रित होकर अपने मन ही मन एक सूत्रता की प्रतिज्ञा कर रहे थे तभी वातावरण में सुगंधी फैल गयी और पांचों ने परस्पर एक-दूसरे की आंखों में देखा कि आभा आरोह और अवरोह के साथ अपने स्थान पर छा रही है। पांचों ने एक-दूसरे का हाथ

पकड़कर इस प्रकार घेरा डाल लिया जैसे वे सूर्यमण्डल को घेरकर खड़ा हों।

पीछे से कुन्ती ने प्रवेश किया और मुस्कराकर पूछा, “यह कौन-सा खेल खेला जा रहा है?”

“यह खेल नहीं है। हम पांचों भाई मिलकर सूर्यमण्डल को घेर रहे हैं।” अर्जुन की बात सुनकर पांचों भाई हंस पड़े किन्तु कुन्ती के मन में न जाने कैसा विशाद घिर आया कि वह उतने उत्साह से पुत्रों की मुस्कराहट का साथ न दे सकी और सबको आशीर्वाद देती हुई अपने कक्ष में लौट गई।

रंगभूमि

हस्तिनापुर में पिछले कई दिवसों से वातावरण सुगंधित होने के साथ-साथ वीरता की चर्चाओं से भर गया था। अवसर था रंगभूमि का आयोजन।

महाराजा धृतराष्ट्र ने कुलगुरु कृपाचार्य और पितामह भीष्म की आज्ञा से रंगभूमि का आयोजन करने की आज्ञा दी जिसमें सभी राजकुमार प्रजा के सामने अपने अस्त्र कौशल का प्रदर्शन करेंगे।

प्रजा को पता चल जाना चाहिए कि वर्तमान राजा के बाद गद्दी पर बैठने वाले उनके युवराज और राजा अपरिमित शक्तिशाली हैं। सारी प्रजा पूर्ण रूप से निर्भय होकर रह सकती है। पहले तो धृतराष्ट्र ने रंगभूमि के समारोह की तिथि निश्चित नहीं की। इसलिए प्रजा में अनिश्चय-सा छाया रहा, किन्तु उन्होंने एक दिन तिथि की घोषणा भी कर दी लेकिन यह घोषणा करते समय धृतराष्ट्र का गला भर आया और वे अपनी विवशता से बहुत दुखी हो उठे। आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और भीष्म ने मिलकर एक भूमि देखी और उस पर रंगभूमि का आयोजन किया। प्रजा के लिए रंगभूमि का प्रदर्शन जितना उत्साहवर्धक था उतना ही कुन्ती के लिए यातनादायक।

राजा धृतराष्ट्र ने आचार्य द्रोण को बहुत भेंट दी और उनका धन्यवाद किया क्योंकि उन्होंने राजकुमारों को शिक्षा दी थी।

सभी राजकुमार अपने-अपने वेश में रंगमण्डप में पधारे और सबने आचार्य द्रोण को नमस्कार किया तथा अपने-अपने विशेष शस्त्र के आधार पर रण कौशल प्रकट किया।

अर्जुन का अस्त्र कौशल प्रदर्शन और प्रजा की वाह-वाही। किन्तु यह क्या! एकदम सारी प्रजा, आचार्य द्रोण, भीष्म और कृपाचार्य ने देखा कि द्वार से एक परम तेजस्वी वीर स्वाभिमानी चाल से चला आ रहा है। उसे आता हुआ देखकर सभी दर्शक उसकी ओर देखने लगे। दुर्योधन खड़ा हो गया और उसने विशेष रूप से उस वीर को देखा।

यह कर्ण था जिसे बाहर रोकने का साहस द्वारपाल नहीं जुटा पाये थे।

उसने कवच और कुण्डल धारण किये हुए थे। उसके चेहरे पर सूर्य जैसी आभा झलक रही थी। पहले तो कुन्ती कुछ समझ नहीं पायी लेकिन जब कर्ण ने सीधे अर्जुन के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा अभिव्यक्त की तो उसे ध्यान हो आया कि यह और कोई नहीं है उसका अपना ही अंश

है। कर्ण को देखते ही कुन्ती के सामने अपना अतीत बहुत तेजी से घूम गया।

कुन्ती ने बहुत प्रयास करके अपने को वर्तमान में रखा और उसने सुना कर्ण अर्जुन से कह रहा था-हे कुन्ती के पुत्र जो कुछ भी तुमने किया है मैं वह सब कुछ करके दिखा सकता हूँ। कर्ण को देखकर दुर्योधन के मन में न जाने कैसी अज्ञात हर्ष की रेखाएं प्रवाहित हो गईं।

जब कृपाचार्य ने मिले हुए प्रमाणों में कर्ण को सूतपुत्र कहकर पुकारा तब कुन्ती को बहुत बुरा लगा लेकिन वह कुछ कह नहीं सकती थी, बस अपने सामने ही अपने पुत्र को वीर होते हुए भी उपेक्षित होता हुआ अनुभव कर रही थी।

कर्ण अर्जुन से कह रहा था-“हे अर्जुन जो बल और पराक्रम में श्रेष्ठ होते हैं उनका कोई दूसरा आधार नहीं होता। तुम चाहो तो मेरे से युद्ध कर सकते हो।”

कर्ण युद्ध के लिए तैयार हुआ और उधर अर्जुन ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया।

कुन्ती से बैठा नहीं गया किन्तु वह खड़की भी नहीं हो सकती थी। उसके मन ने कहा-यह अवसर है यदि तू चाहती है कि कर्ण दुर्योधन के पक्ष में न जाये तो सत्य बात कह दे। किन्तु मन कहता रहा और कुन्ती का विवेक उसे रोकता रहा।

कुन्ती को इस बात की अधिक चिंता नहीं थी कि सूर्य की तरह प्रकाशित उसका पुत्र उससे दूर है। चिंता इस बात की थी कि कर्ण दुर्योधन की ओर झुक रहा था और जिस समय अर्जुन और कर्ण को लेकर प्रजा में एक प्रकार का विभाजन हो गया तो आगे क्या होगा, यह सोचकर कुन्ती को मूर्छा हो आई।

किसी को भी कुन्ती की मूर्छा का कारण नहीं पता लगा लेकिन विदुर जी ने जल मंगवाकर उनके मुंह पर छिड़कवाया और उन्हें चैतन्य किया।

कुन्ती के पास कोई आधार नहीं था कि वह कर्ण और अर्जुन को रोक पाती। उन्होंने अपनी ही आंखों के सामने यह देखा कि कर्ण की जाति पूछने पर कर्ण ने अपने को अपमानित अनुभव किया और उस अवसर का लाभ उठाकर दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा बना दिया।

राजा बनने के बाद दुर्योधन और कर्ण के बीच जैसे एक क्षण में अटूट मैत्री हो गई। थोड़े समय के बाद ही प्रजा ने देखा कि अधिरथ रंगभूमि में आ गया है। वह पसीने से लथपथ हो रहा है। अधिरथ को देखते ही कर्ण सिंहासन से उठा और उसने पिता के चरण छुए। अधिरथ ने बेटा-बेटा कहकर कर्ण को प्यार किया।

कुन्ती कष्ट से पागल हो रही थी।

भीमसेन अधिरथ को देखकर क्रोध से उन्मुक्त हो उठे और उन्होंने कर्ण का अपमान किया। भीमसेन ने कहा-“सूतपुत्र होने के कारण हे कर्ण तू अर्जुन से युद्ध करने योग्य नहीं है।”

भीम की बात सुनकर दुर्योधन को भी क्रोध हो आया तो उसने कहा, “अरे मूर्ख, तुम्हें तो ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। कर्ण जैसा रूप और गुण वाला सूत जाति की स्त्री का पुत्र कैसे हो

सकता है? और फिर शूरवीरों और नदियों की वास्तविक उत्पत्ति के स्थल को कौन जान सकता है? तुम्हारा जन्म किस प्रकार हुआ यह भी मुझे मालूम है। इस प्रकार दुर्योधन ने भीम की गर्वोक्ति का उत्तर तो दिया लेकिन दोनों परिवारों के बीच शत्रुता की एक ऐसी खाई बन गई जो फिर किसी के भी परिश्रम करने से भरी नहीं जा सकी।”

रंगभूमि की क्रीडा समाप्त हो गई थी। सब लोग हर्षित होकर वापस लौट रहे थे लेकिन उस सारे समूह में केवल एक स्त्री थी जो बहुत धीरे-धीरे भारी पैरों से चल रही थी। और वह इस तरह से क्यों चल रही थी यह किसी को नहीं मालूम था। जिन्हें मालूम था उनमें से कोई भी उस समय नहीं था।

वह माता कुन्ती थी।

वारणावत यात्रा

राजा प्रासाद में इस सूचना से सबको आश्चर्य हुआ कि वारणावत के वार्षिक पर्व के अवसर पर अब की बार महाराजा धृतराष्ट्र नहीं जा रहे हैं। जब से कुन्ती अपने पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर आई है तब से बहुत सारी सामान्य होने वाली बातें भी विशेष लगने लगीं।

कुन्ती के लिए यह बात बहुत संतोषजनक थी कि धीरे-धीरे युधिष्ठिर प्रजा में लोकप्रिय होते जा रहे हैं। रंगभूमि के प्रसंग को उसने धीरे-धीरे अपने से काटकर फेंक दिया। और यही सोचा कि सब कुछ विधाता के हाथ में है और जिस प्रकार की क्रीडा वह कर रहा है उसे सहना ही होगा।

अपने कक्ष में बैठी-बैठी कुन्ती ध्यान मग्न थी कि प्रचारिका आई और बोली—“आपके ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर आपसे मिलना चाहते हैं।”

“तो फिर आज्ञा लेने की कौन-सी बात है। ऐसा कौन-सा विधान है जो पुत्र को मां के पास आने से रोकता है।”

थोड़ी देर बाद ही प्रसन्नतापूर्वक कदम रखते हुए युधिष्ठिर ने प्रवेश किया और माता के सामने सिर झुका कर खड़ा हो गये।

“ये आज्ञा लेकर आने का नया विधान तुमने बनाया है?”

युधिष्ठिर मुस्कराये और बोले—“आपसे पूछने में क्या संकोच था। मैंने केवल इसलिए पुछवाया था कि कहीं आप किसी और कार्य में व्यस्त न हों।”

“अच्छा तो बोलो क्या कार्य है?”

“मैं अपने आपको बड़ा विचित्र स्थिति में अनुभव कर रहा हूँ।”

“जरा सा भी कोई प्रश्न तुम्हारे सामने आता है तो तुम्हारी स्थिति विचित्र हो जाती है। कर्तव्य अकर्तव्य, धर्म अधर्म का ध्यान रखकर और राजसी व्यवहार के बीच कुछ अंतर होना

आवश्यक है।”

“मैं आपकी बात नहीं समझा।”

“तुम प्रजा की बात कहना चाहते हो न।”

“हां, मैंने सुना है कि प्रजा दुर्योधन और महाराज धृतराष्ट्र से प्रसन्न नहीं है।”

“तो इसमें तुम क्या कर सकते हो। प्रजा को प्रसन्न करना राजा का काम है और तुम तो राजा नहीं हो। यह देखना जेठ जी का काम है कि उनकी प्रजा उनसे कितना प्रसन्न रहती है। अभी प्रश्न यह नहीं है। मुझे लगता है तुम्हारे मन में कुछ और बात है।” कुन्ती ने दृढ़ता से कहा।

युधिष्ठिर बोले—“इस बार वारणावत् में पर्व में भाग लेने के लिए महाराज स्वयं नहीं जाना चाहते और मुझे भेजना चाहते हैं।”

“तो फिर इसमें सोचने की क्या बात है। महाराज की आज्ञा का पालन करो और वारणावत् चले जाओ।”

“यदि इतनी ही बात होती तो मैं केवल आज्ञा लेने आ जाता लेकिन इस समय मुझे एक परामर्श भी करना है।” युधिष्ठिर गंभीर मुद्रा में अपनी माता से बोले—“मैं अकेला जाने के लिए ही इच्छुक था किन्तु मेरे छोटे भाई कहते हैं कि वे भी साथ जायेंगे।”

“तो इसमें विचारने की क्या बात है उन्हें भी अपने साथ ले जाओ। जब सब लोग साथ रहेंगे तो समय बहुत अच्छी तरह व्यतीत होगा।”

यह कहते ही कुन्ती के मन में विशेष प्रकार के भाव पैदा होने लगे। वह यह नहीं जान पाई कि ये भाव अनुकूल हैं या प्रतिकूल और ये क्यों उठ रहे हैं।

युधिष्ठिर ने अपनी माता को सोचते हुए देखा तो बोले—“पता नहीं क्यों मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि आपको भी साथ चलना चाहिए।” “यह तो और भी प्रसन्नता की बात है। तुम लोगों के बिना मैं यहां करूंगी भी क्या? मैं तो वहीं रहना चाहती हूं जहां मेरे पुत्र हों। तुम जब थोड़ी देर के लिए यहां से चले जाते हो तो मेरा मन घबरा जाता है।”

युधिष्ठिर कुन्ती से बात करके चले गये और कुन्ती अपने ही ऊहापोह में खो गयी। वह हस्तिनापुर की राजनीति से बहुत परिचित नहीं थी किन्तु इस बीच दुर्योधन के द्वारा जो-जो घटनाएं होती रहीं उन पर बहुत गंभीरता से न भी विचार किया जाये तो भी कुछ न कुछ तो अर्थ निकलता ही है।

तो क्या करे कुन्ती? अपने पुत्रों के साथ जाये और उनकी रक्षा करे?

कुन्ती के लिए युधिष्ठिर का युवराज होना और दुर्योधन का निरंतर उसके विपरीत कार्य करना बहुत कष्टदायक हो रहा था।

संध्या का समय था। कुन्ती संध्या के पूजन की तैयारी कर रही थी कि पांचों पुत्र उसके पास पहुंचे। पांचों को एक साथ आते हुए देखकर कुन्ती के मन में एक तरफ तो हर्ष का संचार हुआ

लेकिन साथ-साथ किसी प्रकार के अशुभ की आशंका भी मन में घर कर गयी। कुन्ती को युधिष्ठिर ने बताया—“हमें शीघ्र ही वारणावत चले जाना है। वहां हमारे लिए विशेष भवन बनाया गया है। हमें वहां की प्रजा से मिलने का अवसर मिलेगा, किन्तु जाने से पहले विदुर काका ने बुला भेजा है और हम उनके पास जा रहे हैं। मार्ग में आपसे मिलने के लिए आ गये।”

कुन्ती ने बड़बड़ी गम्भीरता से युधिष्ठिर की बात सुनी और कहा—“इस सारे राजभवन में केवल विदुर काका ही ऐसे हैं जो हमेशा तुम्हारे हित की बात सोचते हैं। तुम उनके पास जाओ और ध्यान से सुनना। वे जो कुछ भी कहें उसके गूढ़ अर्थ की ओर भी ध्यान देना।”

कुन्ती ने पांडवों की ओर देखा और उसकी आंखों में वात्सल्य छलछला गया। ये सब इतने बड़बड़े हो गये हैं, वीर हैं, दिव्य अंश हैं फिर भी मेरे सामने आकर इतने विनम्र और बच्चे बन जाते हैं।

पुलकित कुन्ती अपनी आंखों का भीगापन नहीं छिपा पाई और वह पांचों भाइयों पर प्रकट हो गया। अर्जुन बोले, “हम इसीलिए आपको अपने साथ ले चल रहे हैं। पांच वीर पुत्रों की मां और आंखों में यह भीगापन।”

“अच्छा-अच्छा जाओ विदुर काका से मिलने जाओ।” अपनी आंखों की कोरों को पोंछते हुए कुन्ती ने कहा और पांचों भाई माता के चरण स्पर्श करके वहां से चले आये।

अब कुन्ती अकेली थी। पूजा में भी मन नहीं लग रहा था। उसने अपने आपसे पूछा ऐसा क्यों हो रहा है। मैं अपने बच्चों के साथ जा रही हूं फिर मन में यह द्वन्द्व क्यों?

आखिर विदुर ने वारणावत जाने से पहले विशेष रूप से पांडवों को भेंट करने के लिए क्यों बुलाया है? चलो जो कुछ भी हो कल तो चले जाना है।

वारणावत नगर में पुरोचन ने पांडवों का स्वागत किया। कुन्ती ने देखा कि सब लोग जयकार करते हुए उनके पुत्रों के चारों ओर खड़बड़ा हो गये हैं और सारी प्रजा अपने घरों से निकलकर अपने युवराज की अगवानी के लिए आई है। राजमहल के औपचारिक वातावरण से निकलकर कुन्ती और पांडवों को बहुत अच्छा लग रहा था।

“राजमहल हमारे लिए बना ही नहीं।” भीम ने अपनी माता के चेहरे पर आई हुई प्रसन्नता की रेखाओं को देखकर कहा। और यह सुनकर नकुल सहदेव भी चुप नहीं रहे। वे बोले—

“हमारा निवास ऐसे स्थान पर होना चाहिए। जहां एक ओर जंगल और दूसरी ओर नगर हो। हमें नगर से अधिक वन अच्छा लगता है।”

प्रजा से सम्मान पाकर माता सहित सभी पांडवों ने वारणावत नगर में प्रवेश किया और सबसे पहले अपने धर्म की साख रखने वाले ब्राह्मणों के घर में गये और उसके बाद वहां के योद्धाओं और व्यापारियों तथा सेवकों से भेंट की।

पुरोचन ने उन्हें उस भवन का रास्ता बताया जहां उन्हें ठहरना था। पांचों पांडव अपनी माता के साथ उस भवन में रहने लगे और बहुत आनन्द के साथ उनका समय बीतने लगा। प्रतिदिन नगर

निवासी कुछ न कुछ भेंट लेकर युवराज के पास आते और युवराज उसमें से थोड़ा-थोड़ा भेंट लेकर शेष नगर निवासियों को वापिस कर देते।

वारणावत आने से पहले विदुर जी ने जो कुछ गूढ़ संकेत दिये थे धीरे-धीरे उनका अर्थ कुन्ती की समझ में आने लगा था। उनके पुत्रों को विदुर जी ने कहा था—“जब जंगल में आग लगती है तो बिल में रहने वाले चूहे तथा और जो जन्तु रहते हैं नहीं जलते।”

कुन्ती और युधिष्ठिर ने पुरोचन की अतिरिक्त भक्ति पर शंकालु होकर उस भवन पर विचार करना आरम्भ कर दिया।

“यह भवन तो लगता है आग भड़काने वाली वस्तुओं से बना है। इसमें चर्बी की गंध आती है।”

“मुझे यही लग रहा है कि इसकी दीवारों पर उस सामान का प्रयोग किया गया है जो जल्दी ही आग पकड़ लेता है। क्या करना चाहिए?”

कुन्ती ने कहा—“मुझे लगता है कि दुर्योधन तुम लोगों को जला कर नष्ट करना चाहता है।”

युधिष्ठिर बोले, “आप चिंता न करें। काका विदुर ने हमें कुछ ऐसे संकेत दिये थे जिससे इसका आभास पहले ही हो गया था।”

कुन्ती को युधिष्ठिर के कहने के बाद यह विश्वास हो गया कि उसने जो कुछ भी सोचा था वह ठीक था। उन दोनों के वार्तालाप में भाग लेने के लिए भीम भी आ गये। भीम ने माता कुन्ती और अग्रज से कहा—“यदि आप ऐसा मानते हैं कि इस घर का निर्माण अग्नि को उद्दीप्त करने वाले तत्वों से हुआ है तो हमें यहां से चले जाना चाहिए।”

इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—“हमें अपनी किसी भी चेष्टा से यह अभिव्यक्त नहीं होने देना चाहिए कि हमें दुर्योधन के षड्यंत्र का ज्ञान हो चुका है। यदि पुरोचन हमारी किसी भी चेष्टा से हमारे भीतरी मनोभाव को ताड़ लेगा तो वह शीघ्रतापूर्वक अपना काम बनाने के लिये उद्यत हो हमें किसी न किसी हेतु से जला भी सकता है।”

“यह मूढ़ पुरोचन निन्दा अथवा अधर्म से नहीं डरता एवं दुर्योधन के वश में होकर उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करता है।”

“यदि हमारे जल जाने पर पितामह भीष्म कौरवों पर क्रोध भी करें तो वह अनावश्यक है, क्योंकि फिर किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए वे कौरवों को कुपित करेंगे।”

“अथवा सम्भव है कि यहां हम लोगों के जल जाने पर हमारे पितामह भीष्म तथा कुरुकुल के दूसरे श्रेष्ठ पुरुष धर्म समझकर ही उन आततायियों पर क्रोध करें, परन्तु वह क्रोध हमारे किस काम का होगा?”

“यदि हम जलने के भय से डर कर भाग चलें तो भी राज्यलोभी दुर्योधन हम सबको अपने गुप्तचरों द्वारा मरवा सकता है। इस समय वह अधिकारपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित है और हम उससे वंचित हैं। वह सहायकों के साथ और हम असहाय हैं। उसके पास बहुत बड़ा खजाना है और हमारे पास उसका सर्वथा अभाव है। अतः निश्चय ही वह अनेक प्रकार के उपायों द्वारा हमारी हत्या कर सकता है।”

“इसलिये इस पापात्मा पुरोचन तथा पापी दुर्योधन को भी धोखे में रखते हुए हमें यहीं कहीं किसी गुप्त स्थान में निवास करना चाहिये।”

“हम सब मृगया में रत रहकर वहां की भूमि पर सब ओर विचरें, इससे भाग निकलने के लिए हमें बहुत से मार्ग ज्ञात हो जायेंगे।”

“इसके सिवा आज से ही हम जमीन से एक सुरंग तैयार करें, जो ऊपर से अच्छी तरह ढकी हो। वहां हमारी सांस तक छिपी रहेगी। फिर हमारे कार्यों की तो बात ही क्या है। उस सुरंग में घुस जाने पर आग हमें नहीं जला सकेगी।”

“हमें आलस्य छोड़कर इस प्रकार कार्य करना चाहिये, जिससे यहां रहते हुए भी हमारे संबंध में पुरोचन को कुछ भी ज्ञान न हो सके और किसी पुरवासी को भी हमारे बचाव कार्य की कानोंकान खबर न हो।

कुन्ती के सामने उसके पुत्रों की सुरक्षा के प्रश्न को लेकर एक बहुत बड़ा दृश्य उपस्थित हो गया। और वह सोचने लगी कि मैंने जीवन-भर जेठ के प्रति भक्तिभाव रखा है और वे अपने पुत्रों को षड्यंत्र करने से भी नहीं रोक सकते।”

दो चार दिन ही बीते होंगे कि विदुर का एक विश्वासपात्र लाक्षागृह में आया और उसने विदुर जी के संबन्ध में समाचार सुनाकर उनसे पूछा कि मैं क्या कर सकता हूं?

“पुरोचन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को आग लगाने का विचार कर रहा है।”

“हूं! तो उसका समय अब निश्चित रूप से आ गया है।” अपनी माता के सामने ही युधिष्ठिर ने खनक से कहा।

षड्यंत्रकारी होने के बावजूद पुरोचन के प्रति कुन्ती के मन में एक भाव पैदा हो गया किन्तु उसने कोई भी बात मुंह से नहीं निकाली। वह सब कुछ अपनी दृष्टि से अपने पुत्रों के द्वारा होता हुआ देख रही थी।

“दुर्योधन ऊपर से बहुत ठीक बनता है और भीतर से वह मुझे भी मेरे पुत्रों के साथ जलाना चाहता है तो उसकी इच्छा इतनी गहरी हो गयी है। राजा बनने की इच्छा मनुष्य को कितना गिरा देती है।”

“राजा ही नहीं, स्वार्थ का थोड़ा-सा भी अंश मनुष्य को गिराने के लिए बहुत होता है। मनुष्य अपने पथ से गिरता ही तब है जब वह अपने स्वार्थ से मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता।”

कुन्ती बहुत सतर्क होकर बैठी थी क्योंकि उन्हें इस बात की भी चिंता थी कि उनके मन के असंतुलन से कहीं किसी को कुछ पता न चल जाये।

विदुर ने जिस खनक को भेजा था वह पांडवों के सामने बैठ गया और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

युधिष्ठिर ने खनक से कहा—“तुम अपने यत्न से हमको बचाओ और इस कार्य में शीघ्रता होनी चाहिए क्योंकि हमारे जल जाने पर उसका मनोरथ पूरा हो जायेगा।”

जल जाने की कल्पना करते ही कुन्ती का मन और भी बेचैन हो गया। उसने खनक की तरफ

आशापूर्ण दृष्टि से देखा और कहा कि तुम शीघ्र से शीघ्र ऐसा कार्य करो जिससे पुरोचन को हमारे विषय में कुछ पता न चले।

तब उस सुरंग खोदने वाले ने बहुत अच्छा ऐसा ही होगा, यह प्रतिज्ञा की और कार्य सिद्धि के लिए प्रयत्न में लग गया। खाई की सफाई करने के ध्याज से उसने एक बहुत बड़ी सुरंग तैयार कर दी।

उसने उस भवन के ठीक बीच में से वह महान सुरंग निकाली। उसके मुहाने पर किवाड़ लगे थे। वह भूमि के समान सतह में ही बनी थी। अतः किसी को मालूम नहीं हो पाती थी।

पुरोचन के भय से उस सुरंग खोदने वाले ने उसके मुख को बंद कर दिया था। दुष्ट बुद्धि पुरोचन सर्वदा मकान के द्वार पर ही निवास करता था। और पांडवगण भी रात्रि के समय शस्त्र सम्हाले सावधानी के साथ उस द्वार पर ही रहा करते थे। इसलिए पुरोचन को आग लगाने का अवसर नहीं मिलता था। वे दिन में हिंस्र पशुओं को मारने के बहाने एक वन से दूसरे वन में विचरते रहते थे। पांडव भीतर से तो विश्वास न करने के कारण सदा चौकन्ने रहते थे, परन्तु ऊपर से पुरोचन को ठगने के लिए विश्वस्त की भांति व्यवहार करते थे। वे संतुष्ट न होते हुए भी संतुष्ट की भांति निवास करते और अत्यंत विस्मययुक्त रहते थे।

विदुर के मंत्री और खुदाई के काम में श्रेष्ठ उस खनक को छोड़कर नगर के निवासी भी पांडवों के विषय में कुछ नहीं जान पाते थे।

एक प्रातःकाल कुन्ती और पांडवों ने मिलकर यह निश्चय किया कि अब उन्हें यहां रहते-रहते बहुत समय हो गया है। लाक्षागृह छोड़ देना चाहिए। सबने इस बात का समर्थन किया और फिर एक रात महारानी कुन्ती ने दान देने के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराया। ब्राह्मणों के साथ बहुत सी स्त्रियां भी आ गईं। कुन्ती ने सबको बड़ी प्रेम से भोजन कराकर बिलकुल इसी भाव से कि वह यह स्थान छोड़ रही हैं, विदा किया।

किन्तु काल बड़ा बलवान होता है। पांडवों के ज्ञान के अभाव से ही एक भीलनी पांच बेटों को लेकर वहां आई। ऐसा लगता था जैसे काल ने ही उन्हें प्रेरित करके वहां भेजा हो। नहीं तो कुन्ती और पांडवों में से किसी का भी यह मन नहीं था कि पुरोचन के अतिरिक्त किसी और को इस लाक्षागृह के षड्यंत्र का भाजन होना पड़े।

भीलनी और उसके पुत्र सुरापान से मतवाले हो रहे थे और उन्होंने बिना किसी को बताये उस घर में विश्राम किया और सो गये।

रात का समय था। आंधी बहुत जोर से चल रही थी। किसी को एक दूसरे की सुध नहीं थी और यह स्वाभाविक है कि ऐसे में कुछ भी हो सकता था। क्योंकि लोग वैसे उस महल से दूर थे और यदि पास भी होते तो भी देखने का अवसर न मिलता।

पांचों पांडवों ने अपनी माता को उठाया और सुरंग के दरवाजे तक ले आये। भीम उन्हें वहां सुरक्षित नीचे उतारकर उस घर में चारों तरफ से आग लगाने लगे और जब उन्हें यह विश्वास

हो गया कि चारों तरफ आग पूरी तरह से लग चुकी है तो वे स्वयं ही उस सुरंग के रास्ते नीचे उतरने लगे।

घर के अन्दर सुरंग से कुन्ती सहित पांडव निकल रहे थे और भवन में भयंकर आग लगी हुई थी। जो पुरवासी अभी तक अपने घरों में थे उन्होंने जलने की तड़तड़ आवाज से घबराकर अपने द्वार खोल दिये और देखा कि जिस लाक्षागृह में पांडव ठहरे हुए थे वह धधक कर जल रहा है। उस घर को जलता हुआ देखकर पुरवासियों के मुख पर दुख छा गया।

“अरे! इस महल में आग लग गई। पांडव लोग जल गये होंगे।”

“नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। हमारे प्रिय युवराज इस तरह जल कर नहीं मर सकते।”

“माता कुन्ती का क्या हुआ होगा?”

“यह केवल एक दुर्घटना है।”

“नहीं, मुझे तो इसमें पुरोचन का षड्यंत्र लग रहा है। मैंने कई बार देखा है कि दुर्योधन इधर आया करते थे और पुरोचन से गुपचुप बातें किया करते थे।”

“क्या वास्तव में पांडव जल गये होंगे?”

पुरवासी तरह-तरह की बातें करते हुए अपने-अपने पुण्यों को याद करते हुए जलते हुए भवन के आसपास इकट्ठे हो गये। कोई कह रहा था। यह धृतराष्ट्र और दुर्योधन का षड्यंत्र है। राजा धृतराष्ट्र की बुद्धि बिगड़ गई। पांडव जल गये।

सारे पुरवासियों की आंखों से आंसू निकल रहे थे। भय, क्रोध और ग्लानि से उनके मन की भावनाएं ने व्यक्त नहीं हो पा रही थीं। वे विश्वास भी नहीं कर पाते थे कि पांडव इस तरह से जल गये होंगे और दूसरी ओर भीमसेन की शारीरिक शक्ति का लाभ उठाकर पांडव बहुत जल्दी-जल्दी उस सुरंग के रास्ते से वन में पहुंचना चाहते थे।

लाक्षाग्रह से थोड़ा ही दूर वन शुरू हो जाता था और विदुर के भेजे हुए खनक ने लाक्षागृह से वन के शुरू होने तक ही सुरंग का निर्माण किया था।

माता सहित पांचों पांडव निश्चित रूप से न सोने के कारण आलस्य में थे लेकिन भीम सदा की तरह सचेत थे किन्तु चलते हुए भी कुन्ती को मानसिक यंत्रणा सता रही थी। युधिष्ठिर को आश्चर्य हो रहा था और भीम को क्रोध आ रहा था। भीम चाहते थे कि उसी समय कुछ ऐसा कर दिया जाये जिससे दुर्योधन का सत्यानाश हो जाये।

“आखिर हम क्यों इस प्रकार छिपकर भाग रहे हैं?” उन्होंने माता से पूछा और फिर जोर देकर कहा—“हमें अभी हस्तिनापुर वापिस चलना चाहिये।”

“नहीं, हम अभी हस्तिनापुर नहीं जायेंगे।” कुन्ती बोली।

“आपको वन में बहुत कष्ट होगा।”

“मैं हमेशा ही वन में रहती आई हूँ। मुझे न अपने पति के साथ वन में कष्ट हुआ है और न अपने पुत्रों के साथ होगा। अपने कर्तव्य का पालन मैं तब भी करती थी और अब भी। यह मेरा कर्तव्य है कि मैं तुम्हारे साथ रहकर वन में ही तुम्हारे जीवन के विभिन्न आयामों को विस्तार दूँ। देखो ‘भीम’ कुन्ती ने आगे कहा—षड्यंत्रकारी को शुरू में पकड़ लेने से उसका पाप पूरा नहीं होता इसलिए हमें थोड़ा से कष्ट उठाने होंगे और इससे यह पता चलेगा कि इस राजसिंहासन को लेकर जो एक अन्दर ही अन्दर संघर्ष केवल एक तरफ से कौरवों के मन में पल रहा है वे उसके लिए कहां तक जा सकते हैं।”

कुन्ती ने कहा—“देखो तुम्हारे काका विदुर यदि चाहते तो इस षड्यंत्र का भण्डाफोड़ वहीं कर सकते थे? या यह भी हो सकता था कि यहां नगरवासियों को बुलाकर भवन की सामग्री दिखाई जाती किन्तु जानते हुए भी उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया?”

कुन्ती क्षण-भर के लिए ठहरी और बोली—

“उन्होंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि इससे एक तो सम्पूर्ण प्रजा की सहानुभूति तुम्हारे प्रति होगी और दूसरे दुर्योधन की दुष्टता किसी से भी नहीं छिपी रहेगी। और जब हस्तिनापुर में हम सब लोगों के जीवित रहने का समाचार पहुंचेगा तो जिन लोगों ने अपने मुख और मन दोहरे चेहरे बना रखे हैं उनके मुखमंडल साफ हो जायेंगे।”

“काले-काले दिखाई देंगे, सफेद-सफेद।”

इस बार अर्जुन चुप नहीं रह सके और बोले—“अब जल्दी ही आगे का कार्यक्रम निश्चित किया जाये।”

पांचों पांडव माता कुन्ती के साथ चलकर गंगा के समीप पहुंच रहे थे।

विदुर को यह भी देखना था कि किसी प्रकार पांडवों के बच निकलने की बात जल्दी से किसी को पता न चले। उन्होंने एक पुरुष वहां पर भेजा जिसका काम था पांडवों को गंगा के पार उतारना। पांडव गंगा के किनारे पहुंच गये थे और उन्होंने देखा कि वहां एक नाव है उसकी ध्वजाएं बड़ी ऊंची-ऊंची हैं। उसमें नौका चलाने का एक यंत्र भी लगा हुआ है।

जैसे ही पांडव वहां पर पहुंचे तो उन्होंने देखा—कि वह पुरुष हाथ जोड़कर कह रहा था—“घास-फूस तथा सूखे वृक्षों के जंगल को जलाने वाली और सर्दी को नष्ट कर देने वाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहने वाले चूहे आदि जन्तुओं को नहीं जला सकती। यों समझकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है।”

“इस संकेत से आप यह जान लें कि मैं विश्वासपात्र हूँ और विदुर जी ने ही मुझे भेजा है। इसके सिवा, सर्वतोभावेन अर्थ सिद्धि का ज्ञान रखने वाले विदुर जी ने पुनः मुझसे आपके लिये यह संदेश दिया कि कुन्तीनन्दन तुम युद्ध में भाइयों सहित दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को अवश्य परास्त करोगे इसमें संशय नहीं है।”

“यह नौका जलमार्ग के लिये उपयुक्त है। जल में यह बड़ी सुगमता से चलने वाली है। यह

नाव तुम सब लोगों को दश से दूर छोड़ देगी, इसमें संदेह नहीं है।”

इसके बाद माता सहित नर श्रेष्ठ पांडवों को अत्यन्त दुखी देख नाविक ने उन सबको नाव पर चढ़ाया और जब वे गंगा के मार्ग से प्रस्थान करने लगे, तब फिर इस प्रकार कहा—

“विदुर जी ने आप सभी पाण्डु पुत्रों को भावना द्वारा हृदय से लगाकर और मस्तक संधकर यह आशीर्वाद फिर कहलवाया है कि तुम शान्तचित्त हो कुशलपूर्वक मार्ग पर बढ़ते जाओ।”

विदुर जी के भेजने से आये हुए उस नाविक ने उन शूरवीर नरश्रेष्ठ पांडवों से ऐसी बात कहकर उसी नाव से उन्हें गंगाजी के पार उतार दिया।

पार उतरने के पश्चात् जब वे गंगाजी के दूसरे तट पर जा पहुंचे तब उन सबके लिये जय हो, जय हो, यह आशीर्वाद सुनाकर वह नाविक जैसे आया था, उसी प्रकार लौट गया।

कुन्ती ने इस बीच अपने मन में अनेक प्रकार के निश्चय लिये जैसे वह अपने पांचों लड़कों के लिए एक शक्ति के रूप में उभरना चाहती थी। यद्यपि उसके पुत्र स्वयं शक्तिशाली हैं फिर भी वह अपना माता का कर्तव्य पूरा करके उन्हें और भी अधिक शक्तिशाली बनाना चाहती है किन्तु थोड़ी देर बाद ही कुन्ती ने यह महसूस किया कि गंगातट पार करने के बाद वह ऐसे स्थान पर आ गये हैं जहां दिशाओं का ज्ञान भी समाप्त हो गया है। कुन्ती को एक ओर अपने मन की दृढ़ता से चिंता हो रही थी और दूसरी ओर वह थक रही थी। कुन्ती की थकान देखकर भीम को बहुत करुणा आई और कभी-कभी उन्हें मूर्छा भी होने लगती थी।

यद्यपि भीम अपने पैरों से अनेक वनस्पतियों को रौंदकर रास्ता बनाते हुए चलते जा रहे थे फिर भी औरों की दुर्बलता से उन्हें भी कष्ट होता था।

उन्होंने विचार किया कि ऐसे मार्ग से चलें जहां गुप्त स्थान पर पहुंच जायें। माता कुन्ती को अपने कंधे पर बिठाकर कभी-कभी तो वे अपने भाइयों को भी अपनी गोद में उठा लिया करते थे और इस तरह से चलते रहे।

एक रमणीक स्थान पर आकर भीमसेन ने अपना वेग कम किया। कुन्ती उनके कंधे से उतरी और पृथ्वी पर लेटते ही उन्हें नींद आ गई। थोड़ी देर के बाद कुन्ती ने कहा—“मुझे प्यास लगी है।”

उनकी स्थिति देखकर भीम का हृदय करुणा से भर गया और वे तुरन्त पानी लेने के लिए निकले। थोड़ी देर में ही वे पानी लेकर आ गये और सबने पानी पीकर शांति की सांस ली।

माता कुन्ती और भाइयों को पृथ्वी पर इस तरह से सोये हुए देखकर भीम का बलशाली हृदय भी पिघलने लगा। उन्होंने सोचा कि हम माता को क्यों कष्ट दे रहे हैं। कितना अच्छा होता कि इन्हें हम हस्तिनापुर छोड़ आते किन्तु सहसा ही उन्हें यह लगा, यह मैं क्या सोच रहा हूं-सच या झूठ। जैसे ही माता को पता चलता कि हमें यहां पर जला दिया गया है तो इसके बाद भी कि हम बच जाते माता की क्या दशा होती?

भीमसेन सोच रहे थे हमारा यह परिवार मां और हम पांचों से मिल करके ही तो बन रहा है।

बाकी हस्तिनापुर में क्या है। जो भी है वे सिंहासन से जुड़ गए हैं।

कुन्ती और हिडिम्बा

एक भयंकर आवाज को सुनकर कुन्ती की नींद खुल गयी। वे घबराकर उठीं और चारों तरफ देखने लगीं। पहले तो कुछ पता नहीं चला किन्तु बाद में उन्होंने देखा कि थोड़ी-सी दूरी पर उनका मझला पुत्र भीम एक सुन्दर युवती के साथ बात कर रहा है। कुन्ती के मन में आया कि वह उनकी ओर बढ़ चले। कहां तो यह भयंकर ध्वनि और कहां उनका पुत्र एक सुन्दर युवती से बात कर रहा है। दोनों में कोई मेल नहीं।

अरे! ये तो मेरे समीप आ रहे हैं। कुन्ती कुछ और सचेत हो गई। भीम और वह सुन्दर युवती कुन्ती के पास आये और उस युवती ने माता कुन्ती के पैर छुए।

“आयुष्मान भव।” कुन्ती के मुंह से आशीर्वाद निकला और फिर उन्हें पता चला कि क्या-क्या हुआ। उनके सोते-सोते उनके वर्तमान संसार में एक और संसार बन गया।

“तुम्हें अपने भाई की मृत्यु का कोई दुख तो नहीं?” कुन्ती ने हिडिम्बा से पूछा।

“भाई की मृत्यु का दुख किसे नहीं होता माता, किन्तु भाई को भी भाई होना चाहिए। जिस पुरुष का मैं वरण कर चुकी हूं उसे यदि मेरा भाई मारना चाहे तो मैं उसे कैसे स्वीकार कर सकती हूं।”

“मैंने बहुत समझाया किन्तु मेरा भाई मनुष्य के मांस के लिए इतना पागल हो उठा था कि उसने अपनी बहिन के मन की कोमल भावनाओं का भी आदर नहीं किया।”

कुन्ती को सारा वृत्तांत पता चला कि किस प्रकार क्रूर राक्षस हिडिम्बा ने सोते हुए पांडवों की मानस गंध से अपने में भूख की उत्तेजना अनुभव की और अपनी बहिन को पांडवों के पास भेजा। उसका आदेश था कि वह इन्हें देखे और उसके लिए भोजन तैयार करे।

वह बेडोल राक्षस पांडवों के पास आया और उनके मांस मिलने की संभावना से मन में तुष्ट होने लगा। पहले उसने अपनी बहिन को आदेश दिया कि हमारे क्षेत्र में सोने वाले उन मनुष्यों को मारकर तुम मेरे पास ले लाओ फिर हम उन्हें खायेंगे और प्रसन्न होकर नृत्य करेंगे।

हिडिम्बा भाई की बात मानकर वहां पर आई और उसने देखा कि ये पांच भाई वहां हैं जिनमें से माता के साथ चार तो सोये हुए हैं और एक भीमसेन जाग रहे हैं।

धरती पर उगे हुए साखू के पौधे की भांति मनोहर भीमसेन को देखते ही वह राक्षसी मुग्ध हो उन्हें चाहने लगी। इस पृथ्वी पर वे अनुपम रूपवान थे।

उसने मन ही मन सोचा इन श्यामसुन्दर तरुण वीर की भुजाएं बड़ी-बड़ी हैं, कंधे सिंह जैसे हैं, ये महान तेजस्वी हैं, इनकी ग्रीवा शंख के समान सुन्दर और नेत्र कमलदल के सदृश विशाल हैं। ये मेरे लिये उपयुक्त पति हो सकते हैं।

मेरे भाई की बात क्रूरता से भरी है, अतः मैं कदापि उसका पालन नहीं करूंगी। नारी के हृदय में पति प्रेम ही अत्यन्त प्रबल होता है। भाई का सौहार्द्र उसके समान नहीं होता। इन सबको मार देने पर इनके मांस से मुझे और मेरे भाई को केवल दो घड़ों के लिये तृप्ति मिल सकती है और यदि न मारूँ तो बहुत वर्षों तक इनके साथ आनन्द भोगूंगी।

हिडिम्बा इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थी। वह मानव जाति की स्त्री के समान सुन्दर रूप बनाकर लजीली ललना की भाँति धीरे-धीरे महाबाहु भीमसेन के पास गयी। दिव्य आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। तब उसने मुस्कराकर भीमसेन से इस प्रकार पूछा—“पुरुष रत्न! आप कौन हैं और कहां से आये हैं? ये देवताओं के समान सुन्दर रूप वाले पुरुष कौन हैं, जो यहां सो रहे हैं?”

“और अनघ! ये सबसे बड़ी उम्र वाली श्यामा सुकुमारी देवी आपकी कौन लगती है, जो इस वन में आकर भी ऐसी निःशंक होकर सो रही है, मानो अपने घर में ही हो।”

“इन्हें यह पता नहीं है कि यह गहन वन राक्षसों का निवास स्थान है। यहां हिडिम्बा नामक पापात्मा राक्षस रहता है।”

“वह मेरा भाई है। उस राक्षस ने दुष्ट भाव से मुझे यहां भेजा है। देवोपम वीर! वह आप लोगों का मांस खाना चाहता है।”

“आपका तेज देवकुमारों का सा है, मैं आपको देखकर अब दूसरे को अपना पति बनाना नहीं चाहती। मैं यह सच्ची बात आपसे कह रही हूँ।”

“धर्मज्ञ! इस बात को समझकर आप मेरे प्रति उचित बर्ताव कीजिये। मेरे तन-मन को कामदेव ने मथ डाला है। मैं आपकी सेविका हूँ, आप मुझे स्वीकार कीजिये।”

“महाबाहो! मैं इस नरभक्षी राक्षस से आपकी रक्षा करूंगी। हम दोनों पर्वतों की दुर्गम कन्दराओं में निवास करेंगे। अनध! आप मेरे पति हो जाइये।”

“वीर! मैं आपका भला चाहती हूँ। कहीं ऐसा न हो कि आपके ठुकराने से मेरे प्राण ही मुझे छोड़कर चले जायें। शत्रुदमन! यदि आपने मुझे त्याग दिया तो मैं कदापि जीवित नहीं रह सकती। मैं आकाश में विचरने वाली हूँ। जहां इच्छा हो वहीं विचरण कर सकती हूँ। आप मेरे साथ भिन्न-भिन्न लोगों और प्रदेशों में विहार करके अनुपम प्रसन्नता प्राप्त कीजिए।”

“ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, जो मेरे लिये परम सम्माननीय गुरु हैं, इन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया है। ऐसी दशा में तुमसे विवाह करके किसी प्रकार परिवेत्ता नहीं बनना चाहता। कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो इस जगत में सामर्थ्यशाली होते हुए भी, सूखपूर्वक सोये हुए इन बन्धुओं को, माता को तथा बड़े भ्राता अरक्षित छोड़कर जा सके।”

“मुझ जैसा कौन पुरुष कामपीडित की भाँति इन सोये हुए भाइयों और माता को राक्षस का भोजन बनाकर अन्यत्र जा सकता है।”

“आपको जो प्रिय लगे, मैं वही करूंगी। आप इन सब लोगों को जगा दीजिये। मैं इच्छानुसार

उस मनुष्य भक्षी राक्षस से इन सबको छुड़ा लूंगी।”

“मेरे भाई और माता इस वन में सूखपूर्वक सो रहे हैं, तुम्हारे दुरात्मा भाई के भय से मैं इन्हें जगाऊंगा नहीं।”

“सुलोचने! मेरे पराक्रम को राक्षस, मनुष्य, गन्धर्व तथा यक्ष भी नहीं सह सकते हैं।”

“अतः भद्रे! तुम जाओ या रहो, अथवा तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वही करो तन्वंगि। अथवा यदि तुम चाहो तो अपने नरमांस भक्षी भाई को ही भेज दो।”

तब यह सोचकर कि मेरी बहन को गये बहुत देर हो गयी, राक्षसराज हिडिम्ब उस वृक्ष से उतरा और शीघ्र ही पांडवों के पास आ गया।

उसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थीं, भुजाएं बड़ी-बड़ी थीं, केश ऊपर को उठे हुए थे और विशाल मुख था। उसके शरीर का रंग ऐसा काला था, मानो मेघों की काली घटा छा रही हो। तीखे दातों वाला वह राक्षस बड़ा भयंकर जान पड़ता था।

देखने में विकराल उस राक्षस हिडिम्ब को आते देखकर ही हिडिम्बा भय से थर्रा उठी और भीमसेन से इस प्रकार बोली—

“देखिये वह दुष्टात्मा नरभक्षी राक्षस क्रोध में भरा हुआ इधर ही आ रहा है। अतः मैं भाइयों सिाहत आपसे जो कहती हूं, वैसा कीजिये।”

“वीर! मैं इच्छानुसार चल सकती हूं, मुझमें राक्षसों का सम्पूर्ण बल है। आप मेरे इस कटिप्रदेश या पीठ पर बैठ जाइये। मैं आपको आकाश मार्ग से ले चलूंगी।”

“तुम डरो मत, मेरे सामने यह राक्षस कुछ भी नहीं सुमध्यमे! मैं तुम्हारे देखते-देखते इसे मार डालूंगा।”

“यह नीच राक्षस युद्ध में मेरे आक्रमण का वेग सह सके, ऐसा बलवान नहीं है। ये अथवा सम्पूर्ण राक्षस भी मेरा सामना नहीं कर सकते।”

“हाथी की सूंड जैसी मोटी और सुन्दर गोलाकार मेरी इन दोनों भुजाओं की ओर देखो। मेरी ये जांघें परिधि के समान हैं और मेरा विशाल वक्षस्थल भी सुदृढ़ एवं सुगठित है।”

“शोभने! मेरा पराक्रम भी इन्द्र के समान है, जिसे तुम अभी देखोगी। विशाल नितम्बों वाली राक्षसी तुम मुझे मनुष्य समझकर यहां मेरा तिरस्कार न करो।”

“आपका स्वरूप तो देवताओं के समान ही है। मैं आपका तिरस्कार नहीं करती। मैं तो इसलिये कहती हूं कि मनुष्यों पर ही इस राक्षस का प्रभाव मैं कई बार देख चुकी हूं। मैंने अपनी आंखों से अपने भाई को मानवों को मारकर उनका खून पीते देखा है।

हिडिम्बा अपने भाई के विषय में कहती जा रही थी और डर भी रही थी। उसे भाई के संदर्भ में दो बातों का डर हो रहा था। एक तो यह कि उसका भाई मनुष्य से प्रेम करने के कारण उसे प्रताड़ित करेगा और दूसरा यह कि उससे इनकी हानि न हो जाये।”

अब तक का जो भी संवाद दोनों के बीच में हुआ उससे यह सिद्ध हो गया था कि कोई भी एक-दूसरे से कम नहीं है। माता कुन्ती ने दोनों की ओर देखा और हस्तक्षेप करते हुए बोली—“पुत्री तुम चिंता मत करो। तुम कौन हो इसको जाने बगैर मैं इतना कह सकती हूँ कि मेरे पुत्र की शक्ति अपरिमित है। और इसीलिये मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि चिंता की कोई बात नहीं है।”

अपने पुत्र और हिडिम्बा राक्षस के बीच युद्ध की सारी सूचनाएं पाकर कुन्ती का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। कुन्ती ने दोनों को मन से आशीर्वाद दिया और गन्धर्व विवाह करने की अनुमति दे दी।

कुन्ती ने अनुभव किया कि और भाइयों के साथ रहते हुए भीम और हिडिम्बा को संकोच होगा इसलिए उनका वहां से चले जाना उचित है। और इन दोनों का अकेले छोड़ देना चाहिए।

कुन्ती का यह प्रस्ताव जब भीम के सामने आया तो भीम ने ही उत्तर दिया कि आपका ऐसा सोचना भावुकता से भरा हुआ है। हमें कोई संकोच नहीं होगा। भीम की भावना समझकर कुन्ती ने थोड़ी-सी दूर पर ही उनके साथ निवास किया।

कुन्ती ने जब हिडिम्बा से अपने पुत्र के विषय में थोड़ी-सी चिंता अभिव्यक्त की तो हिडिम्बा ने कहा कि आप जब भी मेरा स्मरण करेंगी मैं आपके पास आजाऊंगी।

कुन्ती ने यह भी अनुभव किया कि यदि हिडिम्बा को उसकी भावना के अनुरूप कार्य न करने दिया जाये तो व्यर्थ की स्थितियां पैदा होंगी।

भीम और हिडिम्बा के बीच इस भावात्मक सम्बन्ध का एक पक्ष वह था कि उन दोनों में संतान की उत्पत्ति तक यह सम्बन्ध बना रहेगा और उसके बाद भीम अपने भाइयों को लेकर यात्रा के दूसरे आवश्यक पड़ावों पर चला जाएगा।

समय व्यतीत हुआ और कुन्ती ने देखा कि भीम और हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच अपनी माता के अनुरूप गया है। वह मायावी-सा लग रहा था-छाती चौड़ी और नाक बहुत बड़ी। उसे देखकर भय-सा उत्पन्न होता था।

हिडिम्बा ने अपने पुत्र के विषय में माता कुन्ती से बताया कि इसका सिर घड़ी की तरह केश रहित है इसलिए इसका नाम घटोत्कच रखा जाता है।

पुत्र की उत्पत्ति के बाद थोड़ा समय तक पांडवों की परिक्रमा करता हुआ घटोत्कच वहीं साथ में रहने लगा तो एक दिन कुन्ती ने उससे कहा—“हे पुत्र! तुम कुरुकुल में जन्मे हो और मेरे लिये साक्षात् भीमसेन के समान हो। हमारी सहायता करो।”

“आप आज्ञा दीजिये मैं क्या करूँ। मैं इतना कहता हूँ कि जब भी आप मुझे स्मरण करेंगे तभी मैं उपस्थित हो जाऊंगा।”

कुन्ती द्रुपद राज्य की ओर

मार्ग बहुत लम्बा था और थकान भी पैरों पर लिपटी जा रही थी, किन्तु जिस ब्राह्मण के यहां एक चक्रानगरी में पांडवों ने रहने का निश्चय किया उसके घर आकर उन्हें संतोष और आनन्द का अनुभव हुआ। मार्ग में उन्हें व्यास जी मिले और उन्होंने उपदेश दिया कि सोच-समझकर कार्य करो और लगभग एक मास तक इसी स्थान के आसपास रहो।

कुन्ती ने व्यास जी का आदेश मानकर एकचक्र नगरी में रहना स्वीकार किया, किन्तु भाग्य अनेक रूप धारण करके आता है। कुन्ती के लिए वह दिन एक अद्भुत निर्णय का दिन था जब चारों भाई भिक्षा के लिए गये हुए थे और भीम माता के साथ घर पर ही थे।

अकस्मात् कुन्ती ने सुना कि सारा ब्राह्मण परिवार आर्तनाद कर रहा है। एक तो वह उस घर में रह रही थी। दूसरे स्वभाव से ही दयालु होने के कारण वह इस क्रन्दन से अलग नहीं रह सकीं। उन्होंने ब्राह्मण के पास जाकर उससे पूछा—

“तुम्हारे कष्ट और रोने कारण क्या है?”

“मैं अपने अतिथियों को अपना कष्ट बताकर उन्हें तंग नहीं कर सकता।”

“किन्तु अतिथियों का भी कर्तव्य होता है कि वे जहां रहते हैं वहां के लोगों की यथासंभव सहायता करें। क्योंकि धर्म यही कहता है कि जिसने उपकार किया है उसका कुछ न कुछ कार्य उपकारी व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए। क्योंकि उपकार से जितना पुण्य प्राप्त होता है प्रतिउपकार से उससे भी अधिक होता है।”

कुन्ती के वचन सुनकर ब्राह्मण ने अपने कष्ट का वर्णन कर दिया और उनका यह कष्ट घर पर होने के कारण भीमसेन को भी पता चल गया।

भीमसेन आये और उन्होंने कहा—

“माताश्री आपने अभी तो मुझसे पूछा था कि ब्राह्मण परिवार का किस प्रकार कुछ भला किया जाये तो अब समय आ गया है। हम इनका भला कर सकते हैं।”

बात यहीं समाप्त हो गई है और ब्राह्मण अपनी पत्नी से बातचीत करने के लिए घर के अन्दर के भाग में चला गया।

भीम और कुन्ती स्थिति पर विचार करते हुए वहीं पर बातचीत करते रहे तब उन्होंने सुना कि ब्राह्मण अपनी पत्नी से कह रहा था—“मैंने बार-बार तुमसे दूसरी जगह जाने के लिए कहा किन्तु तुम नहीं मानीं। भला ऐसे स्थान पर क्यों रहा जाये जहां जीवन की रक्षा भी न हो सके। तुमने उस स्थान के प्रति आसक्ति अभिव्यक्त की है जहां अब हमारा कोई भी नहीं रहा।”

उन दोनों की बात हो रही थी कि ब्राह्मणी ने अपने को प्रस्तुत करने की अभिलाषा अभिव्यक्त की और उसने कहा—“पति के हित के लिए किया गया उत्सर्ग पुण्यदायक होता है। मैं यदि आपके काम आ जाऊं तो मुझे इस लोक में यश मिलेगा और परलोक में शांति तथा सदगति।”

“नहीं, नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। तुम्हारे बिना बच्चे अनाथ हो जायेंगे। मैं भी अपने कर्तव्य

का पालन करूंगा।”

कुन्ती ने देखा कि ब्राह्मण कन्या भी उस बातचीत में सम्मिलित हो गई है और तब कुन्ती उनके पास गई तो उसी के सामने ब्राह्मण कन्या बोली—

“आप चिन्ता न करें मैं आपके दुखों का निवारण करूंगी। पुत्र तो इसलिए आवश्यक है कि पिता का तर्पण करता है और कन्या तो दूसरे के घर की ही होती है। मैं आप सबके जीवन की रक्षा करूंगी।”

कुन्ती ने ब्राह्मण कन्या के सिर पर हाथ रखा और कहा—“तुममें से किसी को भी जाने की आवश्यकता नहीं है। अब सारी बात मुझे पता चल गई है तो अब आप निर्णय सुन लीजिए।”

कुन्ती ने कहा—“आपके तो एक ही पुत्र है और एक ही पुत्री और इनके पालन के लिए आपकी पत्नी। आपके परिवार में से तो कुछ भी नहीं हटाया जा सकता। अब आप मेरी बात ध्यान से सुनिये। मेरे पांच पुत्रों में से एक पुत्र राक्षस की बलि सामग्री लेकर चला जायेगा।”

“नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि मैंने ब्राह्मण की हत्या कराई तो मेरे दोनों लोक नष्ट हो जायेंगे।”

कुन्ती ने कहा—“आप चिन्ता मत कीजिए। मेरा पुत्र बलवान है और मैंने इससे पहले भी राक्षसों से इसके युद्ध देखे हैं। अनेक राक्षस मेरे पुत्र के द्वारा मारे गये हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि मेरा बलशाली पुत्र इस राक्षस को भी मारकर केवल आपको ही संकट से मुक्त नहीं करेगा अपितु सारे प्रदेश को संकट से बचाएगा।”

कुन्ती ने यद्यपि निर्णय ले लिया था फिर भी वह अपने बड़ पुत्र से पूछना चाहती थी। जब चारों पुत्र लौट कर आये तो कुन्ती और भीम दोनों के मुखमंडल पर युधिष्ठिर को कुछ ऐसा लगा कि इन लोगों ने कुछ करने का निश्चय किया है किन्तु यह जानना शेष था कि वह काम क्या है? उन्होंने माता के समीप आकर कुछ पूछना चाहा फिर कुन्ती बोली—

“बेटा आज भीमसेन मेरी आज्ञा से एक महान कार्य करने जा रहे हैं। जिससे इस सम्पूर्ण नगर के ऊपर बहुत समय से आया हुआ संकट समाप्त हो जायेगा।”

जब युधिष्ठिर को सारी बातों का पता चला तो उन्होंने कहा—“हे माता! आपने जो निर्णय लिया है वह तो ठीक है लेकिन अपने पुत्र को इस तरह संघर्ष के लिए भेज देने में क्या औचित्य है।”

“मैंने जो निर्णय किया है वह किसी दुर्बलतावश नहीं किया। एक तो तुम भीम का बल जानते हो और दूसरे मुझे ब्राह्मण के उपकार का बदला भी चुकाना है।”

कुन्ती दरवाजे के पास खड़ी थी और गर्व तथा करुणा से देख रही थी कि उनका बलशाली पुत्र भीमसेन बाहर दो छकड़ों में अनाज भर के ब्राह्मण की खाद्य सामग्री लेकर जाने के लिए तैयार है। कुन्ती ने मन ही मन वायु देवता का स्मरण किया और उनसे अपने पुत्र की रक्षा की प्रार्थना की। सहसा वायु का वेग तेज हुआ और कुन्ती ने अनुभव किया कि छकड़ों को ले जाने वाले पशु अधिक वेग से चले जा रहे हैं।

समय बड़ा बलवान होता है वह कब किस रूप में किसके पक्ष और विपक्ष में होता है मालूम नहीं पड़ता। मन-मन में हास-परिहास, कष्ट, चिन्ता और शक्ति सम्पन्न कार्यों को करते हुए पांडव और कुन्ती एकचक्रा नगरी छोड़कर आगे की यात्रा प्रारम्भ करने लगे। एकचक्रा नगरी में ही ब्राह्मण के घर पर आये हुए एक अतिथि से उन्होंने अनेक विचित्र कथाएं सुनीं और उनमें यह भी कि किस तरह से द्रौपदी और धृष्टद्युम्न का जन्म यज्ञ विधि से हुआ।

द्रुपद ने द्रौणहन्ता पुत्र पाने की कामना से यज्ञ किया था और उन्हें एक पुत्र और पुत्री मिले।

कुन्ती के सहित पांचों पांडव वन में थोड़ा आगे जाकर उस मार्ग को पकड़ना चाहते थे जो सीधा उन्हें द्रुपद की राजधानी में ले जाता, लेकिन वे क्या देखते हैं कि भगवान वेदव्यास सामने से चले आ रहे हैं। उन्होंने पहले पांडवों का नमस्कार स्वीकार किया, कुन्ती को आशीर्वाद दिया और उन्हें बताया कि द्रौपदी अपने पूर्व जन्म में महादेव जी की पूजा से एक वर प्राप्त कर चुकी है और इस जन्म में वह द्रुपद के यहां पैदा हुई है तथा नियति ने उसे तुम लोगों की पत्नी नियुक्त किया है।

कुन्ती ने सुना और कुछ-कुछ अपने जीवन का खण्ड याद हो आया। मन्त्र के द्वारा भगवान सूर्य का आवाहन। धर्मराज, वायु, देवराज इन्द्र जैसे एक-एक करके उसके स्मृति बिम्ब में कौंधने लगे।

व्यास के मुख से जो बात सुनकर उसे एक क्षण को झटका-सा लगा था वह अब एक बहुत बड़ी तर्कशक्ति से विश्वास बन गया था। कुन्ती को लगा जैसे उन सबके जीवन में देव शक्ति

का इस प्रकार का हस्तक्षेप किसी न किसी बड़का कार्य के लिए उसके बलवान पुत्र और इन पुत्रों के लिए नियत एक ही पत्नी जो विधाता को स्वीकार हो। और उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह कुछ ऐसा करेगी जिससे पत्नी को लेकर इनमें संघर्ष पैदा न हो।

व्यास जी चले गये और कुन्ती ने पहले गम्भीर होकर और फिर हल्के से मुस्कराकर अपने पुत्रों की ओर देखा वह उन्हें साथ लेकर आगे ही आगे इस तरह से बड़ा चली जैसे पांच सिंहों को एक सूत्र में बांध कर उनका संरक्षक चलता है।

द्रुपद की राजधानी समीप आ गई थी। पांडवों ने अपने वेश को छिपाने के लिए जिस प्रकार का अनुलेप किया था उसे और गाढ़ा कर दिया। जिससे कोई उन्हें पहचान न सके। कुन्ती ने यह भी निश्चय किया कि उसके पुत्र ब्राह्मणों की भीड़ में ही अधिक से अधिक रहें। वैसे यदि वे पहचाने भी गये तो क्या हो सकता है। क्योंकि वे तब तक अधिक सुरक्षित हैं जब तक हस्तिनापुर में उनके होने की सूचना नहीं पहुंचती।

सुरक्षित तो वे बाद में भी रहेंगे लेकिन वे जिस संघर्ष को टालना चाहते हैं वह सम्भवतः उनके कंधों पर आ जायेगा। कुन्ती मन से नहीं चाहती थी कि उनके पुत्र किसी संघर्ष में पड़ें।

“तुम कहां रहने का विचार कर रहे हो वत्स?” कुन्ती ने युधिष्ठिर से पूछा।

“किसी कुम्भकार के घर में रहना चाहते हैं और इसके लिए मैंने नकुल सहदेव को जरा आगे भेजा है कि वे स्थान देख लें।”

कुछ समय बाद ही स्थान से परिचय पाकर नकुल और सहदेव नगर सीमा पर लौट आये फिर उसके साथ माता कुन्ती और शेष भाई कुम्भकार के यहां गये।

एक दो दिन बाद ही उन्होंने द्रुपद की घोषणा को सुना। सुनकर कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—“इस घोषणा से तुम्हें कुछ अनुभव हुआ है।”

“कह नहीं सकता कि जो मैं सोच रहा हूं आपका आशय उसी से है।”

“तो बताओ तुम क्या सोच रहे हो?”

“मैं सोच रहा हूं कि महाराजा द्रुपद ने अर्जुन को ढूंढने के लिए इस प्रकार के धनुष की निर्मिती की है और इतना कठिन लक्ष्य वेद रखा है। माता इस वेद को कोई आपका पुत्र ही पूरा कर सकता है।”

कुन्ती ने यह बात सुनी और फिर स्मृति का एक झोंका जैसे उनके पास से गुजर गया। उन्होंने पुत्रों को आदेश दिया कि वे ब्राह्मणों के साथ ही लक्ष्य वेद करने जायें। और वह स्वयं घर में उनकी प्रतीक्षा करेंगी।

लौटकर जब भीम ने बाहर से ही कहा—“देखो मां, हम क्या भिक्षा लाए हैं।”

तो मां ने बिना देखे ही सहज स्वर में कह दिया—

“तुम पांचों भाई पा लो।” कहते ही कुन्ती ने पीछे मुड़कर देखा तो भीम और अर्जुन के

साथ एक सुन्दर सुकुमारी खड़ी थी।

“यह क्या हुआ?” वह सोचते-सोचते बाहर आई और तब अर्जुन ने माता को द्रौपदी स्वयंवर का पूरा वृत्तांत सुनाया किन्तु कुन्ती को वृत्तांत सुनने के बाद भी अपने वचनों की चरितार्थता पर कष्ट अनुभव होने लगा। यह उन्होंने क्या कह दिया कि पांचों पाओ। यह तो भिक्षा नहीं है जिसे पांचों में विभाजित कर लिया जाये।

कुन्ती चिन्ता में पड़ गई किन्तु व्यास जी का कथन भी उनके सामने मूर्त हो आया। व्यास जी ने यही कहा था—

मेरे मुख से भी ऐसा ही कुछ निकला।

पांचों भाई बहुत गम्भीर होकर माता के साथ बैठे थे और इस नई स्थिति पर विचार चल रहा था। द्रौपदी के स्वयंवर पर द्वन्द्व आशा, निराशा के भाव आ जा रहे थे। द्रौपदी को लेकर पांचों भाइयों में फूट न पड़ इसलिए युधिष्ठिर ने कहा—“हे अर्जुन! तुम अग्नि को साक्षी करके द्रौपदी के साथ विवाह करो।”

“आप मुझे अधर्म का भागी बनाना चाहते हैं कि बड़ भाई अविवाहित रहे और छोटे का विवाह हो जाये।”

“तो क्या किया जाये?” युधिष्ठिर ने कहा।

“वही जो धर्म के अनुकूल है। पहले आपका विवाह हो फिर भीमसेन का और फिर मेरा। आप स्वयं धर्म के अनुकूल विचार कर सकते हैं।”

पांचों पांडवों ने व्यास जी की बात स्मरण करके कुछ दैवयोग से और कुछ मानसिकता से द्रौपदी को अपने मन में बसा लिया।

युधिष्ठिर ने अपना निर्णय दिया कि द्रौपदी हम पांचों की पत्नी होगी।

बहुत सारी स्थितियां अपने आप नहीं तय होतीं। थोड़ी देर के बाद ही बलराम जी को साथ लेकर कृष्ण वहां आये और अपना परिचय देकर उनसे बोले कि हमने आपको पहचान लिया।

आग कितनी भी क्यों न छिपी हो वह पहचानने में आ ही जाती है। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। और फिर पर्याप्त समय तक द्रुपद के पास जाने के बाद वार्तालाप का क्रम चलता रहा।

कुन्ती जैसे एक भाव से अपने पांचों पुत्रों को सब प्रकार से एक करना चाहती थी। अब प्रश्न यह नहीं रह गया था कि कुन्ती ने ऐसा कहा किन्तु प्रश्न यह था कि द्रुपद और उनके पुत्र को किस प्रकार समझाया जाये। क्योंकि सामान्य स्थिति में पुत्री का कोई भी पिता अपनी पुत्री का विवाह पांच पुरुषों से नहीं करना चाहेगा किन्तु जब द्रुपद और उनके लड़के को यह पता चला कि द्रौपदी को लक्ष्यवेद में जीतने वाले अर्जुन हैं तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी होते हुए देखकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई किन्तु—

“यह कैसे हो सकता है कि एक स्त्री का पांच पुरुषों से विवाह हो।”

“ऐसा इससे पहले भी हुआ है राजन्। और इसमें धर्मशास्त्र की अलग-अलग विधियां हैं। जब दैव ही किसी बात को निश्चित करता है तो उसमें कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता।”

पुरोहित और युधिष्ठिर की बातचीत से भी द्रुपद कुछ आश्वस्त हुए और उन्होंने पांडवों को बुला भेजा।

पांडव मान मर्यादा और शान के साथ द्रुपद के घर में आये। अब उनके मुखमण्डल पर ब्राह्मणत्व नहीं बल्कि अपने मूल रूप का तेज अभिव्यक्त हो रहा था। भोजन के समय पांडव छोटे-बड़े के क्रम से पंक्ति में बैठ गये और फिर बहुत देर तक द्रुपद और युधिष्ठिर की बातचीत हुई।

अपनी पुत्री के विषय में द्रुपद बहुत चिंतित थे किन्तु व्यास जी के कहने से उनकी चिंता दूर हुई और वह सुन्दर समय उपस्थित हुआ जब द्रौपदी का पांचों पांडवों के साथ विवाह हो गया।

अब कुन्ती के पास एक छोटा-सा कर्तव्य बचा था कि वह अपनी बहू को कुछ उपदेश दे।

कुन्ती ने द्रौपदी को अपने पास बुलाया और कहा—“हे पुत्री जैसे इन्द्राणी इन्द्र में, स्वाहा अग्नि में, रोहिणी चन्द्रमा में, दमयन्ती नल में, भद्रा कुबेर में, अरुन्धती वसिष्ठ में तथा लक्ष्मी भगवान नारायण में भक्ति भाव एवं प्रेम रखती हैं, उसी प्रकार तुम भी अपने पतियों में अनुरक्त रहो।”

“भद्रे! तुम अनन्त सौख्य से सम्पन्न होकर दीर्घजीवी तथा वीर पुत्रों की जननी बनो। सौभाग्यशालिनी, भोग सामग्री से सम्पन्न, पति के साथ यज्ञ में बैठने वाली तथा पतिव्रता होओ।”

“अपने घर पर आये हुए अतिथियों, पुरुषों, बड़े-बूढ़ों, बालकों तथा गुरुजनों का यथायोग्य सत्कार करने में ही तुम्हारा प्रत्येक वर्ष बीते।”

“तुम्हारे पति कुरुजांगल देश के प्रधान-प्रधान राष्ट्रों तथा नगरों के राजा हों और उनके साथ ही रानी के पद पर तुम्हारा अभिषेक हो। धर्म के प्रति तुम्हारे हृदय में स्वाभाविक स्नेह हो।”

“तुम्हारे महाबली पतियों द्वारा पराक्रम से जीती हुई इस समूची पृथ्वी को तुम अश्वमेध नामक महायज्ञ में ब्राह्मणों के हवाले कर दो।”

“कल्याणमयी गुणवती बहू! पृथ्वी पर जितने गुणवान रत्न हैं, वे सब तुम्हें प्राप्त हों और तुम सौ वर्ष तक सुखी रहो।”

“बहू! आज तुम्हें वैवाहिक रेशमी वस्त्रों से सुशोभित देखकर जिस प्रकार मैं तुम्हारा अभिनन्दन करती हूँ, उसी प्रकार जब तुम पुत्रवती होओगी, उस समय भी अभिनन्दन करूंगी, तुम सद्गुण सम्पन्न हो।”

द्रौपदी ने कुन्ती की बात बहुत ध्यान से सुनी और चरण स्पर्श करके कहा—“हे माता! मैं अपने कर्तव्य में किसी भी प्रकार शिथिलता नहीं आने दूंगी। मैंने पांचों पांडवों का वरण किया है और किसी भी प्रकार का भेदभाव मेरे मन को विचलित नहीं कर पायेगा। आप निश्चित रहें।”

कुन्ती सोच रही थी किस प्रकार विधाता उनके साथ कभी कुछ, कभी कुछ करता रहता है

किन्तु उसके सारे करने और न करने में गुण अधिक हैं। वह मूल रूप से द्रौपदी को पुत्रवधु के रूप में पाकर बहुत प्रसन्न हुई थी।

इस प्रसन्नता का कारण यह भी था कि कौरवों के सामने अब स्पष्ट रूप से उनके पुत्रों का पक्ष बढ़ रहा था।

एक मां को अपने पुत्रों के संदर्भ में इससे अधिक और क्या चाहिए!

हस्तिनापुर में वापसी

जब स्थितियां इस प्रकार बदलती हैं कि मिलना और न मिलना गुणा भाग में कुछ अधिक हो जाता है तो मन में शंका का पैदा होना बहुत स्वाभाविक है। कुन्ती ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि द्रौपदी स्वयंवर के बाद महाराजा धृतराष्ट्र, महामंत्री विदुर को द्रौपदी और पांडवों को लेने के लिए पांचाल प्रदेश भेजेंगे लेकिन हुआ ऐसा ही।

कुन्ती बड़बुद गवित चाल में यह सूचना पाकर कि विदुर आये हैं विदुर से मिलने के लिए गई और उन्होंने विदुर के सामने अपनी शंका रख दी।

“क्या यह उचित होगा कि पांडव हस्तिनापुर लौटें?”

“मेरे विचार में तो इसमें कोई बुराई नहीं है।”

“हस्तिनापुर द्वेष और प्रतिहिंसा का घर बन गया है और तुम जानते हो।” कुन्ती ने तेज सांस लेकर कहा।

“तभी तो कह रहा हूँ कि हस्तिनापुर में कुछ तो ऐसा हो जो षड्यंत्र के उत्तर में सहयोग की ध्वनि दे सके। कुछ तो ऐसा हो जिसे वहाँ के निवासी प्रेम कर सकें। कुछ तो ऐसा हो जो हस्तिनापुर की प्रजा के विश्वास का पात्र बन सके।” विदुर कह रहे थे और कुन्ती सुन रही थी।

“मैं तुम्हारे कहने का मतलब पूरी तरह से नहीं समझी।”

“ऐसा तो मत कहिए आप सब कुछ ठीक तरह से समझती हैं और यह आपके ही समझने और ठीक निर्णय लेने के कारण है कि इतनी विरोधी शक्तियां होने के बाद भी पांडवों का कुछ नहीं बिगड़ा। और मुझे हर्ष भी इसी बात का है।”

“लाक्षागृह से तुमने हमें बचाया इसके लिए...”

“यह आपको शोभा नहीं देता कि महामंत्री को उसके छोटे से कर्म के लिए धन्यवाद दिया जाये।”

“मेरा आशय यह नहीं था, किन्तु यदि तुम कहते हो तो मैं पुत्रों से विचार करके हस्तिनापुर जाने के विषय में सोचती हूँ।”

“हमारे मन्तव्य को समझने के लिए अब यहां पर महाराज द्रुपद हैं और वासुदेव कृष्ण भी। वे

जैसा कहेंगे वैसा ही होगा।”

कुन्ती अपने पुत्रों के साथ खड्गी राजा द्रुपद के सम्मान को ग्रहण कर रही थी। राजा द्रुपद ने बहुत भावभीनी स्थिति में अपनी पुत्री को विदा किया। विदा का अवसर बहुत भावमय था। अर्जुन जैसा पुत्री का पति पाकर राजा द्रुपद अपने मन की एक भावना को पूरा होता हुआ अनुभव कर रहे थे और पुत्री के विदा के अवसर पर भावुक भी हो रहे थे।

कुन्ती ने अपनी स्मृतियों को अपने मन में समेटकर आकाश की ओर देखा और हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगी।

कुन्ती के मन में बार-बार राजभवन, नगर, बडङ्गी-बडङ्गी राजमार्ग और फिर फिरकर वन के कुंज घूम रहे थे। वह यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि हस्तिनापुर जाना क्या अब तक के संकटों का हल है या नये संकटों का निमंत्रण। फिर भी जाना तो है ही और कुन्ती अपने पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर आ गई।

कुन्ती को सूचना मिली कि दुर्योधन पांडवों को राज्य नहीं देना चाहते और भीष्म ने उसे आधा राज्य देने की सलाह दी है। भीष्म पांडवों के प्रति भी अपने कर्तव्य की पूर्ति करते रहे हैं। कुन्ती को इसमें कोई सन्देह नहीं था। एक विशेष दूत ने भीष्म और दुर्योधन में हुई बातचीत कुन्ती से बताई। उन्होंने कहा कि उनका पैतृक राज्य अंश इन्द्र भी नहीं ले सकते। उनके चित्त में और एक विचार है। इस राज्य पर तुम्हारा और पांडवों का एक साथ समान अधिकार है।

कुन्ती को यह भी पता चला कि आचार्य द्रोण ने भी पांडवों को उपहार भेजकर उन्हें नगर में बुलाने के लिए सम्मति दी थी। लेकिन यह क्या कुन्ती सोचते-सोचते ऐसे चोट खा गयी जैसे पहाडङ्गी से गिरी हो। अब इस पर वह क्या करे उसके पास इस स्थिति का कोई समाधान नहीं है। उनका अपना तेज अपना पुत्र है। भरी सभा में कह रहा है कि कर्ण पांडवों को राज्य में नहीं आने देना चाहता। तो क्या कर्ण ही उनके पुत्रों के मार्ग में बहुत बडङ्गी बाधा है। यह कैसे सम्भव हो रहा है कि वृक्ष की एक डाल ही पूरे वृक्ष को बडङ्गीने से रोक रही है।

कर्ण का प्रसंग आते ही कुन्ती के मन में न जाने क्या-क्या विचार पैदा हो जाते-अपने पांचों पुत्रों को एक सूत्र में बांधने वाली मैं, उनके जीवन की रक्षा करने वाली मैं, उनके साथ अनेक संकटों का सामना करने वाली मैं इस एक बिन्दु के सामने आते ही क्यों दुर्बल हो जाती हूं।

कुन्ती! तुम्हें अपने आपको इस संदर्भ के लिए हमेशा तैयार करना होगा। जब तक यह जीवन है, कब तक हस्तिनापुर का राज्य है, जब तक दुर्योधन और पांडव संसार में अपने कर्म का पालन कर रहे हैं तब तक यह प्रसंग शूल की तरह चुभता रहेगा। हे देव! तुम्हारी इच्छा क्या है? देव की इच्छा मनुष्य की इच्छा से भिन्न नहीं हो सकती और अगर भिन्न होगी तो उसी की इच्छा का पालन होगा।

कुन्ती अपने महल के बाहरी भाग से नये बने हुए इन्द्रप्रस्थ नगर को देख रही है। सम्भवतः उनके जीवन में ऐसे अवसर बहुत कम आये हैं विशेष रूप से विवाह के बाद, जहां उन्होंने अपने आपको समृद्धि और वैभव के बीच पाया है। उन्होंने तो हमेशा अपने आपको संघर्ष की प्रकृति के

बीच पाया है। इसीलिये कभी-कभी उन्हें अपनी ऐसी स्थिति पर विश्वास नहीं होता।

कुन्ती को नहीं मालूम था कि पांचों पुत्रों का विवाह करने के बाद इन्द्रप्रस्थ के निर्माण के बाद भी उनके जीवन में कोई ऐसा अवसर आयेगा जब फिर उन्हें आशंका का सामना करना पड़ेगा।

नारद द्वारा निर्धारित नियम को भंग करने के कारण अर्जुन 12 वर्ष के लिए फिर से वनवास के लिए जा रहे हैं। माता का हृदय चिंतित हो आया, किन्तु वे इस विषय में विवश थीं। हस्तिनापुर में वापिस आने के बाद अर्जुन से यह उनका पहला और बड़ा संवाद था।

“आप चिंता क्यों करती हैं माते! थोड़ा समय की बात है और मैं तुरंत यह समय व्यतीत करके चरणों में आ जाऊंगा।”

“बात चिंता की उतनी नहीं है जितनी इस बात की कि तुम पांचों के एक साथ होने की अभ्यासी मैं एक तुम्हारे न होने पर कैसे आराम से रह पाऊंगी।”

“आपके चारों पुत्र तो आपके साथ होंगे। और मैं भी जहां-जहां जाऊंगा आपके पास सूचना मिलती रहेगी। मेरा कोई अहित नहीं होगा।”

“मुझे पता है मेरे पुत्रों को अपने-अपने ऊपर बहुत विश्वास है और मैं इसी विश्वास के बल पर अब तक सब कुछ सहन कर पाई हूं।”

“आप अपना उचित ध्यान रखना। यद्यपि मुझे आपके संदर्भ में महाराज और किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई संदेह नहीं है फिर भी...।”

“नहीं पुत्र नहीं, ऐसा मत सोचो। तुम निश्चिन्त होकर जाओ और देखो आर्य भीष्म ज्येष्ठ महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन भी मेरे प्रति वैमनस्य नहीं रखते। इसलिए तुम जाओ और अपने क्षितिज का विस्तार करके लौटो।”

अर्जुन प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए चल दिये और जहां-जहां वे गये वहां जाकर उन्होंने अपनी सफलता प्राप्त की और किसी न किसी प्रकार से उनकी ये सफलताएं हस्तिनापुर में भी पहुंचती रहीं। कुन्ती हर्ष और उल्लास में डूबती उतराती कभी आशंका से ग्रस्त होती और कभी अतिरिक्त प्रसन्नता से भरकर समय को धन्यवाद देती हुई अपने पुत्रों का राज्य देखती रही, किन्तु पांडवों के भाग्य में ऐश्वर्य का संगम विधाता ने बहुत कम लिखा था और वह दिन कुन्ती के लिए फिर से चिन्ताओं और कष्टों का दिन बन गया जिस दिन शकुनि के कहने पर राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को द्यूत क्रीडा के लिए बुलाया। कुन्ती को एक नई आशंका ने घेर लिया था। और अब सारे सूत्र उसके हाथ से निकल चुके थे। उसने निश्चय किया कि पुत्र जो भी करेंगे करते रहें। मैं अब ज्येष्ठ जी और दीदी गांधारी को छोड़कर नहीं जाऊंगी। पता नहीं क्यों उसे विश्वास हो गया था कि उनके स्थान पर अब पांडवों की एकसूत्रता द्रौपदी के हाथ में आ गई थी।

वनवास पर कुन्ती

इन्द्रप्रस्थ राज्य की शोभा, मय के द्वारा बनाई गई सभा, राजसूय यज्ञ और समृद्धि का अपार जाल उस होनी को नहीं टाल सका जिससे यह निश्चित होता है कि मनुष्य का भाग्य उसके कर्म से बहुत तेज चलता है।

विदुर के बुलाने पर पांडव द्रौपदी सहित हस्तिनापुर आ गये और दुर्योधन के विरोध के बावजूद उन्हें आधा राज्य मिल गया और उन्होंने इन्द्रप्रस्थ नगरी का निर्माण किया। सम्भवतः राजा द्रुपद से उन्हें इतना प्राप्त हो गया था कि वह अपने नये राज्य की स्थापना कर सकते थे।

जिस समय कृष्ण के परामर्श पर राजसूय यज्ञ की तैयारी की गई थी उसी समय कुन्ती के मन में हल्की-सी शंका पैदा हो गई थी। न जाने उन्हें बार-बार क्यों लग रहा था कि उनकी जो संतान जंगलों में पैदा हुई है, वहीं बढी-पली है उसे यह राजप्रसाद कैसे रास आयेगा!

अपने सामने से जाते हुए मुकुट पहने जब कुन्ती युधिष्ठिर को देखती तो उसे विचित्र रूप से अनुभव होता। उसने तो पूरे जीवन अपने इस पुत्र को शांति और त्याग की बात कहते हुए सामान्य से वस्त्रों में देखा है। उत्पन्न हुआ था तो उसके बाद भी वन में घास-फूस पर सोता रहा। आश्रम की सुगंधित वायु इसे तरंगित करती रही और अब यह स्वर्ण से निर्मित मुकुट उसके सिर पर रखा है और वह शायद ठीक तरह से हंस भी नहीं पा रहा है।

हां, भीम को देखकर कुन्ती को जरूर यह लगता कि कोई एक व्यक्ति ऐसा है जो इस सारे ऐश्वर्य को अपने मन से भोग रहा है। और जब कभी वह द्रौपदी के ऊपर अपनी दृष्टि डालती तो उसे कभी लगता कि इस स्त्री के मन में इस ऐश्वर्य के प्रति जरा-सा भी विरक्ति का भाव है या नहीं। लेकिन जब भी द्रौपदी राजसी वस्त्रों में उसके सामने आती तो उसे यह विश्वास जरूर होता कि जब कभी इसके ये वस्त्र इसके पास नहीं होंगे तब भी यह किसी शक्ति से कम नहीं होगी।

कुन्ती सोचती थी कभी प्रसन्न होती और कभी आशंकाओं से घिरती और कभी-कभी बिलकुल अपने मौन में बनी रहती। लेकिन जब-जब भी वे गांधारी की सेवा में उपस्थित होतीं उन्हें लगता कि वे सब कुछ निर्विकार होने के बाद भी सहजता से गांधारी का सामना नहीं कर पातीं और गांधारी तो केवल शब्द सुन सकती है उन शब्दों की ध्वनि से निकलते अर्थ यदि पूरी तरह से पकड़ में आ जायें तो चेहरे की भावभंगिमा का अनुमान लगा सकती है नहीं तो उनके लिए केवल शब्द हैं।

गांधारी बड़ी स्नेह से युधिष्ठिर आदि के बारे में पूछती और वे क्षण तो कुन्ती के लिए असहनीय से हो जाते जिनमें वह दुर्योधन के हठ धर्म को लेकर कुन्ती से क्षमा मांगती। एक बार कुन्ती के मन में तो आया कि वह कह दें—“जीजी अपनी आंखों की पट्टी खोल दो और अपने परिवार के जिस कर्म विधान को तुमने अपने भाई या औरों के ऊपर छोड़ रखा है उसे खुद संभालो।” पर कुन्ती इतनी बड़ी बात कैसे कह सकती।

शकुनि के महाराजा धृतराष्ट्र पर बढते हुए प्रभाव की सूचना कुन्ती के पास भी आती जा रही थी और उसकी दुष्ट प्रक्रिया को सुनकर वे बार-बार सहम जातीं, किन्तु आज तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्हें पता चला कि युधिष्ठिर ने उनसे बिना पूछे राजा धृतराष्ट्र

का द्यूत का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।

आकाश में कभी-कभी छोटा-बड़ा काला बादल दिखाई देता है किन्तु इस सूचना से कुन्ती को लगा जैसे उसके चारों तरफ भयंकर कालापन लिये दीवारें रंगी गई हैं। बादलों के बीच से निकलकर शायद आकाश की कोई थाह ली जा सके लेकिन दीवारों से तो सिर में चोट ही लगेगी।

कुन्ती अपने महल के कक्ष में उन सब तैयारियों का अनुमान लगा रही थी जो धृतराष्ट्र के निमंत्रण पर युधिष्ठिर की तैयारियों के रूप में हो सकती थीं। उन्हें लगा कि युधिष्ठिर बिना किसी विकार के तो इस खेल को जानते हैं लेकिन शकुनि वह कैसे विकारहीन खेल खेलेगा। कुन्ती को यह समझ नहीं आ रहा था कि शकुनि जिस षड्यंत्र के रास्ते पर अब तक दुर्योधन और उसके भाइयों को ले गये हैं उससे उनकी इच्छा क्या है। वे कौरव वंश का लाभ चाहते हैं या उसका नाश। अब तक तो उनके सारे कामों का परिणाम दोनों कुलों को संघर्ष की ओर ले गया है और इस संघर्ष से केवल नाश ही होना है।

एक बार उनके मन में आया कि शकुनि की वृत्ति को जीजी के सामने खोलकर कहें लेकिन उन्हें यह पता था कि आखिर उनकी भावना और अपने भाई के बीच वे भाई को ही महत्त्व देंगी। कुन्ती ने कुछ नहीं कहा और वह चुपचाप देखती रही कि युधिष्ठिर द्यूत क्रीडा के लिये चल दिये हैं।

न वह युधिष्ठिर को रोक पाई और न जीजी से कुछ कह पाई। उन्हें लगा कि सब कुछ सम्पन्न होने के बाद भी अब सब कुछ अपनी दिशा में चलना शुरू हो गया है। उन्होंने अब तक जिन दिशाओं को अपनी दृष्टि से संयमित करके रखा था वे सब खुल गयी हैं और उनमें जो कुछ भी बिखरेगा उसे न वे समेट सकती हैं और न कोई उनके मन के अनुसार उन्हें बिखरने से रोक सकता है, क्योंकि जो उनकी तपस्या है शायद उसका फल पूरा हो गया है।

फिर भी सभा में भीष्म होंगे, द्रोण और कृपाचार्य होंगे, अन्याय होने का अवसर कम है किन्तु अब तक कहां रोक पाए हैं ये लोग, दुर्योधन के अन्याय को। इसके प्रतिकार में या तो केवल उनके पुत्रों के शस्त्र चले हैं या कृष्ण और विदुर की नीति के द्वारा उनकी रक्षा हुई है।

कुन्ती को विश्वास नहीं होता भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य पर।

कुन्ती कैसे अविश्वास कर सकती है पितामह, आचार्य और राज-पुरोहित पर।

क्षण-क्षण बीतकर अतीत की एक माला बना देते हैं और वह माला कभी कुन्ती के गले में डल जाती है और कभी हाथों में लिपट जाती है किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि कुन्ती अनुभव करती है कि वह माला पांडु की प्रतिमा पर पड़ी है और धीरे-धीरे उसका एक-एक फूल झरकर गिर रहा है।

पांडु की प्रतिमा के सामने खड़ी कुन्ती अपने ईश्वर का स्मरण करते हुए मना रही थी कि द्यूत क्रीडा से उनके पुत्र सकुशल लौट आएँ किन्तु ऐसा कहां होता है कि हर बार मनुष्य की

इच्छा पूरी हो और उसने क्षण-भर में देखा कि तटस्थ मुखमुद्रा लिए युधिष्ठिर, क्रोधी भीम और उसके भाई माता के सामने खड़े हैं।

सभा भवन का सारा वृत्तांत सुनकर कुन्ती ने सोचा कि वह किसको दोष दे। उसकी कुलवधु की लाज बच गई, यही बहुत है। कैसे हुआ यह सब कुछ और सबके सब निर्वीर्य से बैठे रहे।

घटना बड़ी विचित्र थी और उस घटना से उत्पन्न होने वाला परिणाम और भी अधिक विचित्र था। तेरह वर्ष का वनवास जिसमें एक वर्ष का अज्ञातवास। तो यह कारण था कि कुन्ती को युधिष्ठिर के सिर पर रखा हुआ मुकुट बहुत उत्तेजित और प्रसन्न नहीं करता था। तो यह कारण था कि वह द्रौपदी के राजसी वस्त्रों के बीच एक तपस्विनी की वेशभूषा देखती थी। कुन्ती ने तेज और मन्द चलते हुए वायु को अपनी बांहों में लिया। अपनी आंखों में वज्र जैसा तेज अनुभव किया और पक्षपातहीन होकर धर्म का विचार करते हुए सोचा—

दोष तो सभी का है उनका भी जिन्होंने द्यूत का निमंत्रण दिया। वे अपनी ही आंखों के सामने अपना विनाश देखेंगे।

दोष उनका भी है जो इस निमंत्रण पर चले गये और अपनी पत्नी तक को वस्तु समझकर दांव पर लगा दिया—अपने सामने यातना के पर्वत से उन्हें भी चढ़ाकर विष पीना पड़ागा।

और दोष मेरा भी है कि मैंने अपने हाथों के कसाव को ढीला क्यों छोड़ दिया। मैं अब ऐश्वर्य भोग से विरत बस अपने में लीन रहूंगी।

कुन्ती ने अनुभव किया कि अन्तरिक्ष में ग्रह-उपग्रह आपस में टकरा रहे हैं और किसी के टकराने से निकली चंचला उसके घर में प्रकाश कर रही है और किसी के टकराने से कटककर गिर रहा है आसमान। अब क्या होगा ? उन्हें नहीं मालूम था।

उन्होंने बहुत ध्यान से देखा। पांडु के गले में पड़ी हुई अतीत के मनकों की माला का एक फूल और झर गया है।

कर्ण की याद

सूर्य अभी पूरी तरह से आकाश में आये नहीं थे। गुनगुनी उषा की किरणें पुरोहित के मंदिर के द्वार से उनके पूजास्थल तक झांकना चाह रही थीं कि पुरोहित उठे और मंदिर से बाहर आ गए।

राजकुल का पुरोहित आज थोड़ा-सा अशान्त है। अशान्त इसलिए नहीं कि उसकी पूजा में कोई व्यवधान आया है। अशान्त इसलिए नहीं कि उस पर कोई क्रोधित हुआ है। वह इसलिए अनमना है कि राजमाता कुन्ती ने विशेष दूत भेजकर उन्हें पूजा के लिए बुलाया है।

कितनी बार लड़ा पुरोहित अपने आपसे। कितनी बार आत्मा में उठते हुए प्रश्नों का उत्तर न मिलने पर भी वैसे ही बने रहे जैसे उनके जीवन में प्रश्न है ही नहीं।

पुरोहित ने कितना चाहा कि उसके मंत्र दोनों पक्षों के लिए समान अर्थवाचक हैं, किन्तु ऐसा

कैसे हो सकता है। उसे आदेश है मंगलविधान को सम्पूर्ण करने का और ऐसा मंगल विधान जो पांडवों के जीवन को सुरक्षित करे और कौरव पक्ष का नाश करे।

ऐसा क्यों सोचती है राजमाता कि मेरे द्वारा किया गया यज्ञ और उसमें पढ़ा गए मंत्र पांडु पुत्रों की रक्षा करेंगे और कौरवों के लिए हानिकारक सिद्ध होंगे।

मैं पुरोहित हूँ। धर्मगुरु! मेरे वचन अकाट्य माने जाते हैं। सृष्टि के आदि और अन्त के विषय में कोई कुछ नहीं जानता किन्तु मैं जो भी कह देता हूँ लोग उसे ही मान लेते हैं। मैं कभी गुरु के पद पर था। मेरे सामने ही वीभत्स राजनीति ने गुरु के पद को अपमानित किया और प्राण संग्राम प्रारम्भ होने से थोड़ा ही पहले मुझे राजमाता कुन्ती के आदेश से पांडवों के पक्ष में मंगलविधान करना है।

“तो आप आ गए।” अपनी घबराहट रोककर कुन्ती ने पुरोहित से कहा।

“राजमाता का आदेश हुआ था। मैं न आने का साहस कहां से जुटा पाता।”

“नहीं, ऐसा नहीं है पुरोहित जी। आप तो राजगुरु हैं पर मेरे लिए यह तो स्वाभाविक है कि मैं अपने पुत्रों के लिए मंगल कामना करूँ।”

“किन्तु राजमाता हम केवल प्रभु को याद कर सकते हैं। उनसे अपने अनुकूल होने की प्रार्थना कर सकते हैं लेकिन अगर आप आज्ञा दें तो मैं एक बात कहना चाहता हूँ कि मंत्रीय शक्ति दो तरफ प्रभावित नहीं होती। यह कैसे सम्भव है कि मैं मंत्र पढ़ूँ और उसके प्रभाव से पांडवों की रक्षा हो और कौरवों की असुरक्षा।”

“मैं तो किसी की भी असुरक्षा नहीं चाहती। मैं मां हूँ पुरोहित जी मेरे लिए जितने प्रिय पांडव हैं, उतने ही प्रिय कौरव भी। किन्तु क्या करूँ, दुर्योधन की हठ, युधिष्ठिर ने तो केवल पांच ग्राम ही मांगे थे।” यह कहते-कहते कुन्ती गहरी सोच में डूब गयीं।

पुरोहित ने कहा—“आश्चर्यजनक विसंगति है जीवन में राजमाता कि हम अपने लिए विजय की कामना करते हैं और दूसरों के लिए पराजय की। और यह बाहर द्वार पर खड़ा युद्ध है इसमें क्या सैनिक लड़ेंगे।”

“तो और कौन लड़ेंगा?”

“देवताओं के आशीर्वाद।”

“मनुष्य के जीवन में देवताओं का हस्तक्षेप अभी भी है और इसीलिए शायद मैं यह कह ही नहीं सकता कि मैं ऐसे मंत्र नहीं पढ़ूँगा जिनमें एक वर्ग को जीवन मिले और दूसरे वर्ग को मृत्यु।”

“नहीं, नहीं मैं ऐसा नहीं चाहती।”

पुरोहित इस संवाद को आगे नहीं बढ़ाना चाहते थे क्योंकि उन्हें पता था कि राज्य सत्ता के सामने उनका कोई भी तर्क नहीं ठहर सकता। वह तो इस राज्य में बहुत छोटे से व्यक्ति हैं।

भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य भी इस युद्ध को नहीं रोक पाए।

पुजारी ने पूजा की थाली ठीक की और मंत्रों का उच्चारण करने लगे। कुन्ती वैसे-वैसे ही करती जाती जैसे-जैसे पुजारी उन्हें विधान बताते।

पुजारी ने आचमन के लिए राजमाता की अंजली में जल डाला ही था कि बाहर से बहुत तेज आवाजें आने लगीं। नगाड□, तूरी और शंख बज उठे जैसे युद्ध का पूर्वाभास हो रहा हो।

राजमाता कुन्ती की अंजली कांप गयी। और उन्होंने सुना—कि एक सैनिक कह रहा था—

“जानता हूं किन्तु हम सैनिक हैं

आज्ञा में बंधे हुए

हमको तो लड□ना है

हम नहीं जीतेंगे

हम नहीं हारेंगे

जीतेंगे राजपुरुष

राजपुरुष हारेंगे।”

पुरोहित ने बंटता हुआ ध्यान फिर से पूजा में लगाते हुए कहा—“आप सैनिकों की बातें सुनकर घबरा गयीं।”

“नहीं-नहीं फिर भी मेरा युद्ध से घबराना बहुत स्वाभाविक है। तुम जानते हो पुरोहित युद्ध की क्षति जो देश और धरती की होती है वह दुबारा पूरी हो जाती है लेकिन जो क्षति मनुष्य की होती है और विशिष्ट रूप से नारी की वह नहीं भरती।”

तभी बाहर से सैनिकों का स्वर और भी तीव्र होकर पूजा के कक्ष में गुंजायमान होने लगा। सैनिक कह रहे थे—“अरे तुम क्या समझते हो”

कि इस लड़क़ाई में

कौन जीतेगा

किसी भी महारथी का

विषैला तीर कर देगा समाप्त।

उसे उत्तर देते हुए जैसे दूसरे सैनिक ने कहा, “असली लड़क़ाई तो भाई द्रोण, भीष्म में नहीं होगी। युद्ध का निर्णय तो न द्रुपद करेंगे न भीम। और दूसरों की तो बात ही क्या है।”

“तो फिर कौन निर्णय करेगा?” एक सैनिक ने पूछा तो दूसरे ने तपाक से उत्तर दिया—

“असली युद्ध होगा

निर्णायक युद्ध होगा

कर्ण और अर्जुन के बीच।”

ध्वनि अकस्मात जैसे कुन्ती के पूरे शरीर से टकरायी। वे एकदम कांप गयीं। उनका अंजली का जल पृथ्वी पर गिर गया।

“क्या हुआ राजमाता?”

“कुछ नहीं—कुछ नहीं। आप अपना मंगलविधान पूरा कर लीजिये।”

पुरोहित ने फिर साहस करके पूछा—“आप स्वस्थ तो हैं।”

कुन्ती ने बहुत दृढ़ता से कहा—“मैं स्वस्थ हूं।” पुत्रों के मंगल कामना के अवसर पर अस्वस्थता कैसी।

पुरोहित ने पूजा पूरी की। और दूसरे दिन की प्रातःकाल का विधान बताकर जाने लगे।

कुन्ती एक क्षण के लिए पुरोहित को रोककर बोली—

“एक बात आपसे पूछना चाहती हूं।”

“आज्ञा हो राजमाता।”

कुन्ती अब ताकि सहज हो गयी थीं। उन्होंने पुरोहित से कहा—“इस भयानक युद्ध के अवसर पर मेरे द्वारा की गयी ये पूजा अपने पुत्रों के मंगल के साथ क्या दूसरे पुत्रों के अमंगल की सूचक भी है? और यदि अपने ही पुत्रों का अमंगल हो।”

यह कहते-कहते कुन्ती सहज होते हुये भी बहुत असहज दिखाई दी।

पुरोहित ने कहा—“आप अपने पुत्रों के विषय में चिन्तित न हों? हमारी ओर धर्म है, हमारी

ओर कृष्ण हैं। हमारे पक्ष का अमंगल नहीं होगा।”

पुरोहित चले गये और कक्ष में कुन्ती अकेली रह गयीं। उनके कानों में अभी भी सैनिकों के शब्द गूँज रहे हैं जैसे बार-बार कोई उनसे कह रहा हो ये युद्ध केवल उनके दो पुत्रों के बीच होना है। क्या उसे निश्चित रूप से इन दोनों में से किसी एक पुत्र को खोना होगा। कुन्ती के मन के सभी तार झनझना उठे। वह अपने आपको पूर्ण अकेला अनुभव करने लगी, लेकिन अकेली भी वह कहां रहीं, उनके साथ उनके द्वन्द्व, वर्तमान और अतीत के प्रश्न चारों तरफ चक्कर लगा रहे थे।

कुन्ती के सामने अपने विवाह से लेकर अब तक के सभी घटनाचक्र घूम गये। कुन्ती का विवाह, विवाह से पूर्व सूर्य से संगम, बालक कर्ण का जलप्रवाह और फिर पति के आग्रह से देवताओं का आह्वान, पुत्र प्राप्ति।

क्यों छोड़कर चले गये मुझे मेरे पति? क्यों एक शीतयुद्ध चल रहा है इन्द्र और सूर्य में? उन्हें लगा कि सदियों से चलती आ रही पुरुष प्रधान सत्ता में नारी को उपेक्षित क्यों किया जाता है? क्यों सूर्य सोचते हैं कि कर्ण केवल उनका पुत्र है और क्यों इन्द्र सोचते हैं कि अर्जुन केवल उनका पुत्र है? ये दोनों क्यों नहीं सोचते हैं कि ये दोनों पुत्र मात्र कुन्ती के पुत्र हैं।

कुन्ती सोचने की प्रक्रिया बन्द करना चाहती थी या और गहराई से सोचना चाहती थी कि अब वह क्या करे?

कुन्ती ने सोचते-सोचते द्वार की ओर देखा कि युधिष्ठिर चिन्तामग्न चले आ रहे हैं। युधिष्ठिर के मुखमण्डल पर उसने हमेशा एक सहजता देखी है जैसे रागद्वेष से मुक्त व्यक्ति अपनी शान्ति में ही विलीन रहता है। जब-जब भी प्रश्नों के घेरे उसके ज्येष्ठ पुत्र के सामने आये वह उनमें से निर्विकार बालक की तरह बाहर आ गये। कष्ट हो तो कोई घबराहट नहीं, हर्ष हो तो अतिरिक्त उत्साह नहीं।

कैसे पुत्र को जन्म दिया है कुन्ती ने। और यही पुत्र सारे प्रश्नों का उत्तरदाता भी है।

युधिष्ठिर माता के सामने आये और शीश झुकाकर माता को प्रणाम किया। इस अवसर पर युधिष्ठिर को आया देखकर कुन्ती को थोड़ा आश्चर्य तो हुआ किन्तु वह यह भी जानती है कि जब धर्मराज के इस पुत्र को मानसिक वेदना भेदती है या जब कुछ प्रश्न अनुतरित रह जाते हैं तो हस्तिनापुर का ये युवराज, बालक बनकर अपनी मां की गोद में आ जाता है।

युधिष्ठिर नमन के बाद माता के सामने खड़ा था।

“पूजा हो गयी माताश्री?” युधिष्ठिर ने पूछा।

“हां वत्स! पूजा हो गयी किन्तु ये पूजा अपूर्ण है और पूजा तो की ही जाती है वह चाहे पूर्ण हो या अपूर्ण।”

युधिष्ठिर ने अनुभव किया कि माताश्री कुछ बातों को लेकर उतनी ही व्याकुल हैं जितने वह स्वयं। उन्होंने माता से कहा—

“आपने जो कुछ भी कहा है वह ठीक है। इस युद्ध की भयंकरता के बीच पूजा।”

युद्ध और पूजा में कितना अन्तर है। पूजा मन को जोड़ती है और युद्ध मन, तन, राज्य और विश्वास के टुकड़-टुकड़ कर देता है—

कुन्ती अब युधिष्ठिर से उनके मन की बात सुनना चाहती थी क्योंकि जो बात कुन्ती के मन में है वह तो युधिष्ठिर से कही ही नहीं जा सकती। कुन्ती ने युधिष्ठिर से केवल इतना कहा “वत्स पूजा और युद्ध दोनों ही शाश्वत हैं।”

“किन्तु सच यह भी है माताश्री कि युद्ध को प्रभु ने नहीं बनाया। हमने ही अपने अहंकारों और स्वार्थों से युद्ध को जन्म दिया। हम कभी शान्ति से रहना ही नहीं चाहते। ऐसा लगता है जैसे राजकुल का प्रत्येक सदस्य युद्ध नदी के किनारे खड़ा है और अवसर की प्रतीक्षा में है कि कब वह लड़ और दूसरे को मारे।”

युधिष्ठिर अपनी मां के सामने अपना मन खोलने आये थे। वे माता से युद्ध के औचित्य और अपनी संलग्नता के विषय में बात करना चाहते थे।

कुन्ती ने युधिष्ठिर को देखा और अनुभव किया कि वे बहुत अधिक चिंतित लग रहे हैं। युधिष्ठिर ने गहरी सांस लेकर मां से कहा कि माता युद्ध प्रारंभ होने वाला है। मैंने बहुत कोशिश की कि यह युद्ध रुक जाये लेकिन मुझे लगता है कि मैं भी कहीं न कहीं इस युद्ध में कारण रहा हूँ।

“तुम इस युद्ध में कारण रहे हो....” जैसे कुन्ती को विश्वास नहीं हुआ कि यह बात उनके पुत्र धर्मराज कह रहे हैं।

युधिष्ठिर बोले, “हां मैं भी शायद कारण रहा हूँ क्योंकि मैं अकेला, कभी नहीं रहा। लेकिन मैंने अकेले ने कभी अपनी बात भी तो नहीं मानी। ऐसा लगता है जैसे मेरा कोई भी निर्णय मेरा नहीं था। जैसे-जैसे मुझे लोगों ने कहा मैं मानता चला गया। मैंने इस बात की भी चिंता नहीं की कि इतिहास कल मुझे क्या कहेगा। हो सकता है कल की पीढ़ी मुझे इस बात के लिए क्षमा न करे और यह भी हो सकता है कि लोग मुझे लांछित करें।”

“यह तुम क्या कह रहे हो और अब युद्ध से दो दिन पूर्व ऐसा क्यों कह रहे हो मेरी समझ में नहीं आ रहा। मैं जानती हूँ युधिष्ठिर! कि तुम कितने दोषी हो और कितने निर्दोष। यह भी एक विचित्र बात है कि सब कुछ सहने के बाद भी तुम अपने को दोषी मानते हो।”

युधिष्ठिर बोले—“माता जब-जब मैं युद्ध की तैयारी करते हुए सैनिकों की शंख ध्वनियां सुनता हूँ तब-तब लगता है जैसे मेरा अहंकार ही, मेरा स्वार्थ ही इसमें बोल रहा हो। मुझे लगता है कि समूह का स्वार्थ और मेरा स्वार्थ दोनों मिलकर इस युद्ध की बुनावट करते रहे।”

कुन्ती ने बहुत सहमी हुई दृष्टि से अपने पुत्र की ओर देखा। वह जानना चाहती थी कि उसके मन में क्या कुछ उमड़ रहा है। राजसूय यज्ञ में जीतकर द्यूत में सब कुछ हार जाने के बाद युधिष्ठिर एक पराजय बोध से त्रस्त हो गया।

“मैंने तुम्हारे मुंह से ऐसे वचन कभी नहीं सुने और जो कुछ सामने आया है...कुन्ती का वाक्य पूरा नहीं हो पाया कि युधिष्ठिर बोले—

“हां माताश्री पहले आपने मेरे मुंह से ऐसे वचन कभी नहीं सुने। मुझे क्षोभ इस बात पर है कि मैं समूह की भावना से पराजित क्यों हो गया और यह समूह भी राजकुल का है जिसमें प्रजा का अंश नहीं है।”

“और आज युद्ध मेरे सामने है और मैं चाहूं भी तो इस युद्ध को छोड़ कर नहीं जा सकता। आपने कितने कष्ट उठाये हैं वन में?”

“द्रौपदी को कितना अपमान सहना पड़ा वन में।”

“भाइयों को कितना कष्ट उठाना पड़ा, बार-बार।”

“प्रजा के विरुद्ध अधर्म फैलाते रहे कौरव—

“और यही सब कारण हैं कि मैं भीतर ही भीतर सोच में डूबा हुआ हूं।”

युधिष्ठिर माता के चरणों में झुक गये और कुन्ती बोली, “तुम सम्भवतः ठीक कहते हो और मुझे लगता है कि तुम्हारी ही बात मानी जाती तो युद्ध रुक जाता था।”

“नहीं, नहीं, मुझे यह लगता है शायद मेरे मन में भी सम्राट बनने की इच्छा थी। जब जब मैं अपने हाथों को अपने कन्धों से ऊपर करता मुझे लगता कि मेरे-सिर पर एक मुकुट है मैं उसे छुऊं।”

“और जब गुनगुनाते अंधेरे के बाद ऊषा की लालिमा फूटे तो चारणों के गीत से मेरी नींद खुले।”

“तुम क्या यही प्रलाप करने आये हो मेरे पास किन्तु मैं समझती हूं केवल तुम युद्ध के कारण नहीं हो। तुमने तो अर्जुन और भीम की बहुत सारी बातों का विरोध किया। मैं नहीं समझती कि तुम्हें इस बात को लेकर कोई भी पश्चात होना चाहिए कि यह युद्ध तुम्हारे कारणों से हो रहा है।”

“मैं कारण हूं इस युद्ध की।”

“महाराज धृतराष्ट्र कारण हैं।”

“भीष्म, दुर्योधन, शकुनि सबने थोड़ा-थोड़ा योगदान दिया है कि यह युद्ध हो। और वत्स इस युद्ध में चाहे तुम जीतो और चाहे कौरव सबसे अधिक पीड़ा मुझे होगी।”

युधिष्ठिर की आंखों में आश्चर्य मिश्रित कष्ट फैल गया। “क्यों माता?”

कुन्ती बोली, “इसलिये कि मैंने अब तक जो कुछ भी सहा और जो कुछ भी समेटकर रखना चाहा वह बिखर जायेगा।”

“जब-जब भी मैंने अपने अतीत को देखकर वर्तमान को अनुभव करना चाहा है तब-तब मुझे अपनी सारी सफलताओं के बीच एक असफलता भी दिखाई देती रही है।”

कुन्ती ने युधिष्ठिर की ओर बहुत आत्मीय दृष्टि से देखा और कहा—“किसी भी छोटी या बड़ी घटना के लिए कई बार एक व्यक्ति दोषी नहीं होता लेकिन यह भी समझना चाहिए कि घटनाओं का बहुत-सा चक्र पहले से ही तय होता है।”

युधिष्ठिर ने माता की ओर देखा और कहा, “सब कुछ पहले से निश्चित है फिर भी हम कर्म करते हैं। और यह नहीं मालूम कि हमारे कर्म से निश्चित भाग्य रेखा में कुछ परिवर्तन होता है या नहीं। मुझे किसी बात का भय नहीं लेकिन जब-जब इस युद्ध कारण पर गहराई से विचार करता हूँ तो लगता है कि इस युद्ध का प्रारम्भ रंगभूमि में ही हो गया था।”

युधिष्ठिर माता की ओर देख रहे थे लेकिन अब उनके चेहरे से दृष्टि हटाकर उन्होंने आकाश की ओर देखा और कहा—“रंगभूमि में जैसे ही सूतपुत्र कर्ण का प्रवेश हुआ मेरे मन में उनके प्रति एक श्रद्धा-सी उमड़ उठी। ऐसा क्यों लगा था मां? जैसे कर्ण मेरा बहुत अपना हो। और जब उसने अर्जुन से अपनी प्रतिस्पर्धा स्थापित की तो मेरे मन में यह निश्चित हो गया था कि युद्ध होगा। इसीलिये बार-बार वन में जाने की स्थिति को प्रसन्नता से स्वीकार करता हुआ मैं इस घटना के लिए तैयार था।”

युधिष्ठिर के मुख से कर्ण के विषय में ऐसा सुनकर कुन्ती का मन पता नहीं कैसा हो आया फिर भी उसने युधिष्ठिर के सिर पर हाथ रखकर कहा, “एक वीर दूसरे को देखकर प्रेम या श्रद्धा ही कर सकता है।”

कुन्ती युधिष्ठिर के सामने खड़ी थी और जैसे उनके कानों में सैनिकों का स्वर गूँजने लगा था कि इस युद्ध का निर्णय कर्ण और अर्जुन के बीच में होगा। और युधिष्ठिर भी यही कह रहे हैं कि दुर्योधन का पक्ष कर्ण से ही प्रबल है। तो यह युद्ध तो पक्षों की सेनाओं के बीच नहीं, एक ही मां के दो पुत्रों के बीच होगा। और यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि मैं उसे कह नहीं सकती।

युधिष्ठिर ने माता को शांत चिंतित मुद्रा में देखकर कहा—

“क्या बात है माते! आप बहुत चिंतित दिखाई दे रही हैं।”

“एक मां को युद्ध से चिंता तो होगी ही और मैं केवल तुम्हीं लोगों की मां नहीं हूँ। उन असंख्य सैनिकों की भी मां हूँ जो युद्ध में बिना किसी अपने स्वार्थ के मारे जायेंगे। राजकुल के पुरुषों का निहित स्वार्थ होता है लेकिन उन सैनिकों का क्या अपराध?”

“मेरे मन में भी यही प्रश्न बार-बार उठता है। और इसी हेतु मैं आया हूँ कि अपना मन आपके सामने खोल सकूँ। मेरे मन में जो अपराध बोध जगा था वह आपके दर्शन करके कम हो गया है। मुझे लगता है कि मैं पूरे मन से युद्ध के पक्ष में नहीं हो पाया।”

“किन्तु अब संशय का समय नहीं है और यदि यह युद्ध टल सकता होता तो भगवान कृष्ण अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार न करते। कृष्ण ने कितना प्रयास किया और तुमने भी तो कम प्रयास नहीं किया फिर भी।”

“तो माता आज्ञा है? मैं अब जाकर कुछ व्यवस्था देखूँ। मुझे तो कोई कुछ करने ही नहीं देता।

सेनापति धृष्टद्युम्न अपने आप सारी व्यवस्था संभाल रहे हैं। दो दिन युद्ध में शेष हैं।”

कुन्ती धीरे-धीरे उदास कदमों से जाते हुए युधिष्ठिर को देख रही थी और उन्हें लग रहा था जैसे उनके प्राणों का एक भाग धीरे-धीरे शरीर से बाहर निकल रहा है।

कलाकार अपने कक्ष में शांत मुद्रा में चहलकदमी कर रहा था कि अन्तःपुर की एक विशिष्ट सेविका ने आकर उसे सूचना दी कि महारानी कुन्ती ने आपको बुलाया है।

महारानी कुन्ती ने बुलाया है, चहलकदमी तेज हो गयी और मुखमंडल पर हर्ष तथा घबराहट एक साथ फैल गई। वह राजमहल में अनेक चित्र बना चुका है। किन्तु एक उस बालक का चित्र नहीं बना पाया जिसके लिए राजमाता कुन्ती ने कई बार कहा है।

राजमाता का आदेश और उसकी असफलता। वह क्यों नहीं बना पाता है ऐसा चित्र जिसमें सूर्य का तेज हो और अर्जुन की वीरता तथा कृष्ण की दिव्यता। ऐसा कौन-सा बालक होगा जिसमें यह सब कुछ आ सकता है। कलाकार की बेचैनी बढ़ गयी और उसने एक सप्ताह का समय मांगा।

“कोई भी बलपूर्वक कलाकार को किसी कलाकृति के लिए विवश नहीं कर सकता। इसलिए एक सप्ताह का समय और दिए जाने में कोई आपत्ति नहीं है किन्तु मेरा मन उस चित्र को देखने के लिए बहुत बेचैन है।”

“मैं प्रयास करूंगा कि बहुत जल्दी ही वह चित्र बन जाये।” कलाकार वापिस आ गया था और उसने अपनी कल्पना को आकाश में चारों तरफ दौड़ाया। फूलों से बातचीत की, किरणों के रंगों को अपनी हथेली पर लेना चाहा और तेज अंधड़ सुगन्धित वायु, जल की हाथियों जैसी उठने वाली लहरें और मंद-मंद प्रवाह न जाने क्या-क्या उसने अपने मन में समेट लिया।

और फिर वह क्षण। जब सहसा उसके मस्तिष्क में एक दृश्य कौंध गया था। उसे लगा कि अर्जुन, कृष्ण और सूर्य यदि एक साथ हों। यदि उनकी अपनी-अपनी विशेषता एक साथ मिला दी जाये तो शायद यह दृश्य बन जायेगा।

कलाकार की तूलिका चलनी प्रारम्भ हुई और चलती रही।

एक तेजस्वी बालक का चित्र बन गया।

किन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि इस चित्र को देखने के बाद राजमाता कुन्ती उससे ऐसा प्रश्न भी कर सकती हैं। और प्रश्न का उत्तर तो उसको देना ही होगा।

“निर्भय होकर कहो, तुम जो कहना चाहते हो।” राजमाता दृढ़ता से बोलीं।

कलाकार ने अपना उत्तरीय संभाला और हाथ जोड़कर विनम्र मुद्रा में बोलने लगा, “मैंने आकाश-पाताल एक कर दिया कि आपके मन का सत्य इस बालक में उतार लूं तब कहीं जाकर सफलता मिली है।”

“तुम मेरे मूल प्रश्न पर क्यों नहीं आ रहे हो?”

“मैं क्षमा चाहता हूँ राजमाता, इस बात की व्याख्या मैं नहीं कर पाऊंगा। और जो कुछ मेरे सामने था उसे मैं कैसे कहूँ। क्या इतना पर्याप्त नहीं कि यह चित्र बन गया और आप सन्तुष्ट हैं?”

“नहीं इतना पर्याप्त नहीं। मैं जानना चाहती हूँ कि मेरे मन के सच का यह प्रतिरूप तुम कैसे बना पाये?”

“मुझे अभय दान मिले राजमाता। मैं एक बार फिर आपसे निवेदन करता हूँ कि इस रचना प्रक्रिया को मुझसे न पूछें।”

“मेरे मुख से आदेश या निवेदन बार-बार नहीं निकलता।”

“जानता हूँ राजमाता, लेकिन आप केवल राजमाता नहीं हैं, मेरे लिए माताश्री भी हैं। मुझे याद आता है जब मेरे बचपन में मैं अपनी माता के पास से भागकर आपके यहां आता था तो आप कितने स्नेह से—मुझे मालूम भी नहीं पड़ता था कि मैं इस राज्य के छोटे से कलाकार का बेटा हूँ। कभी-कभी तो मैं स्वयं को राजकुमारों में से एक समझने लगता था।”

“आज भी तुम्हारी वही स्थिति है लेकिन—”

“राजमाता जिस वीर पुरुष को मैंने देखा था। वह मुझे उतना ही तेजस्वी लगा जितने सूर्य प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक रहते हैं। वह मुझे उतना ही महान धनुर्धर लगा जैसे महाराजकुमार अर्जुन हैं। वह मुझे उतना ही दिव्य लगा जैसे भगवान कृष्ण हैं, किन्तु”—कलाकार कहते-कहते रुक गया जैसे अब भीतर की ध्वनि बाहर आने के लिए बाधा डाल रही हो।

“बोलो सब कुछ विस्तार से बताओ।”—कुन्ती ने कहा।

“कहने का प्रयास कर रहा हूँ राजमाता। तो मैंने जैसे ही उस वीर पुरुष को देखा तो उसके बचपन की परिकल्पना की और धीरे-धीरे उसे छोटा करता हुआ बचपन तक ले आया। जैसे कोई श्रद्धेय जात एक ही दिन का बालक।”

कुन्ती के कक्ष में सहस्रों घंटियां बजने लगीं जिन्हें केवल वही सुन सकती थी। एक साथ उनके मन पर आक्रमण हुआ तेज हवा के झोंके का और दिपदिपाती हुई किरणों का। उन्हें लगा जो उनके मन में है कहीं कलाकार वही न कह दे। उन्होंने बिना उसकी तरफ देखे हुए कहा—“आगे क्या हुआ?”

कलाकार अब तक और भी संयत हो चुका था। वह अपनी शक्ति की अभिव्यक्ति के सारे परिणाम स्वीकार करने के लिए तैयार था किन्तु असत्य भाषण नहीं कर सकता था। उसे चिंता में देखकर राजमाता बोली—

“इस बालक में तुमने मेरे मन का सत्य प्रस्तुत कर दिया है उसे एक आकार दे दिया है। मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। हां तो तुम बताओ ना, किस वीर पुरुष को देखा था तुमने?”

कलाकार के चेहरे पर प्रशंसा से आई हुई क्रांति एकदम तिरोहित हो गई। लेकिन उसने अपने

सारे साहस को समेटा और कहा—“राजमाता! मैं एक बार आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।”

“कहो! क्या बात है?”

“क्या उस वीर का नाम बताना बहुत आवश्यक है?”

“हां, बहुत आवश्यक है। मैं जानना चाहती हूँ कि मेरा सत्य क्या है?”

“राजमाता उस वीरवर का नाम सभी लोग अलग-अलग रूप में लेते हैं। कोई उसे दानवीर कर्ण कहता है,” कलाकार ने अपना मुंह कुन्ती के मुंह से बिल्कुल विपरीत कर लिया था, “कोई उसे महारथी कर्ण कहता है, सूतपुत्र अंगराज, न जाने किन-किन नामों से बुलाया जाता है वह।”

अपनी बात कहते-कहते कलाकार को इस बात का ध्यान भी नहीं रहा कि उसके कहने का क्या असर राजमाता कुन्ती पर होता है। उसने जब अपना मुंह राजमाता की ओर किया तो देखा कि वे बहुत व्याकुल होकर अपने मंच पर बैठ गईं। वह विनम्र मुद्रा में पूरी तरह से धरती पर लेट गया और बोला—“मुझे क्षमा कीजिए राजमाता, शत्रु के पक्ष का सत्य इस बालक में चित्रित हो गया है। मेरी कला दूषित हो गई है।”

अब तक कुन्ती सम्भल गई थीं और बोलीं—“कला कभी दूषित नहीं होती। कला सर्वदा सत्य की अभिव्यक्ति करती है और सत्य किसी भी स्तर पर अंकित हो जाता है।” कुन्ती ने उस चित्र को उठाकर कक्ष के गोपनीय स्थल पर रख दिया। कलाकार अब भी सामने खड़ा था जैसे वह प्रतीक्षा कर रहा हो कि उसे दण्ड मिले।

कुन्ती ने बड़ा स्नेह से उसे कहा—“देखो कलाकार तुमने जो चित्र बनाया है वह किसी का भी हो सकता है। तुमने चाहे वह चित्र महारथी कर्ण को देखकर क्यों न बनाया हो। यह अर्जुन का भी हो सकता है और किसी और का भी। कला की कल्पना का मूर्त आधार केवल उसके अन्तर संसार को समृद्ध और प्रेरित करता है। अब तुम जाओ राजकोष से तुम्हें पुरस्कार दिया जायेगा।”

कलाकार यह नहीं सोच पाया कि राजमाता संतुष्ट हैं या असंतुष्ट। उसने सब कुछ सत्य बताकर उचित किया है या अनुचित किन्तु जब वह कक्ष से बाहर लौट रहा था तो उसमें एक आत्मविश्वास झलक रहा था क्योंकि वह इतना तो जानता था कि राजमाता कुन्ती को उसके सभी चित्रों से यह चित्र अधिक अच्छा लगा है।

उसने भी तो बहुत परिश्रम किया है, कल्पना को सत्य में परिवर्तित करने के लिए—

कलाकार कक्ष से बाहर निकल रहा था और कुन्ती कभी उसे देखती थी और कभी वातायन से झांकने वाली सूर्य की किरणों को। वातायन से सूर्य ऐसे झांक रहे थे जैसे आकाश से समृद्धि और ऐश्वर्य उसके कक्ष में बरस रहे हों। कुन्ती के मन में हो आया कि वह एक बार फिर सूर्य से बात करे, एक बार फिर अतीत को क्षणों के वर्तमान की हथेलियों पर रखकर देखे कि उनका रंग कैसा है। एक बार फिर से अपनी पहली जिज्ञासा को अनुभव करे।

किन्तु यह युद्ध और उसके पुत्र। कुन्ती को ध्यान नहीं रहा कि उसके कक्ष का द्वार बहुत धीरे

से खुला और आदिम रात की तरह सूर्यदेव ने प्रवेश किया।

“आप! आर्य आप!” आश्चर्य से कुन्ती बोली।

“हां! मैं! हां, मैं। तुम एक संकट अनुभव कर रही हो।”

“आपको कैसे पता चला भगवन्?”

“क्या यह प्रश्न मन से किया है?”

“नहीं, केवल कौतूहलवश। अन्यथा मैं जानती हूं कि धरती पर ऐसी कौन-सी घटना है जिसे सूर्य देख न पाये। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक धरती और एक सूर्य होता है।”

“तुम्हें चिन्ता किस बात की है। पुत्र मोह या युद्ध की विभीषिका से बचने का कोई आधार। दोनों ही हो सकते हैं।”

“हां, आपने ठीक कहा, एक और पुत्र मोह और दूसरी ओर युद्ध को रोकने की भावना, दोनों एक साथ मेरे मन में उठती हैं। कारण यह है देव कि यह सिर पर सवार युद्ध मेरे अपने ही पुत्रों के बाणों से लिखा जाने वाला है तो मैं इसे क्यों नहीं रोक पा रही हूं। क्या मैं यह नहीं कह सकती कि कर्ण मेरा पुत्र है।”

कुन्ती ने बहुत व्याकुल होकर कहा—“क्या मैं अपने कक्ष में कर्ण और अर्जुन को एक साथ बुलाकर कह नहीं सकती कि तुम दोनों मेरे पुत्र हो युद्ध मत करो। मैं ऐसा कुछ नहीं कर सकती?”

“नहीं, तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकती।”

“कारण।”

“तुम भी जानती हो कि नियति का चक्र मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म विधान का नियंत्रण करता है। और मैं और तुम—देवता मनुष्य—जलचर नभचर सब उस चक्र के आरे के संकेत से काम करते हैं।”

सूर्य ने कुन्ती को आश्वस्त करते हुए कहा, “तुम यह मानकर चलो कि कर्ण तुम्हारा पुत्र था, पुत्र है और पुत्र रहेगा। केवल इस सम्बन्ध की सामाजिक पुष्टि ही तो नहीं है।”

“तुम यह मानकर चलो कि कर्ण कभी भी तुम्हारा पुत्र नहीं था और कभी भी तुम्हारा पुत्र नहीं रहेगा।”

“तुम यह मानकर चलो कुन्ती कि संसार हमेशा कर्ण को सूतपुत्र कहेगा और वह कुन्ती के पुत्र से जाना जायेगा।”

“इतनी उलझन भरी बातें मैं कैसे समझ लूं।”

“तुम बहुत शक्तिवान नारी हो। तुम्हें नहीं ज्ञात तुम्हारी मातृत्व भावना से पालित पोषित और सुरक्षित तुम्हारे पुत्र इस युद्ध में विजयी होंगे। तुम चिन्ता न करो। मेरे पूरे प्रयास के बाद भी तुम्हारे

पुत्र ने देवेश इन्द्र को कवच और कुण्डल का दान कर दिया। क्या यह इस तथ्य का प्रतीक नहीं कि कर्ण को अमर बनाने वाला उसका कवच उसके शरीर से बाहर आ गया और वह असुरक्षित हो गया।”

“तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं ही अपना कोई पुत्र खोऊंगी।”

“केवल तुम्हीं नहीं सहस्रों माताएं युद्ध में अपना पुत्र खोती हैं और इससे भी अधिक दारुण दृश्य उन स्त्रियों के आर्तनाद का होता है जिनके पति युद्ध में वीरगति प्राप्त करते हैं। युद्ध हमेशा ही विनाश लेकर आता है।”

कुन्ती ने सहसा देखा कि सूर्यदेव जिधर से आये थे उधर ही चले गये लेकिन उसके लिए सोचने का एक आधार छोड़ दिया गया।

जन्म और मृत्यु तो जीवन की बहुत सहजताएं हैं। जन्म होता है क्योंकि उसे होना है और मृत्यु होती है क्योंकि उसे भी होना ही है। फिर भय किस बात का? किन्तु भय होता है। ये संबंध, ये माता, पुत्र, भाई, सगे-संबंधी सब मिलकर एक ऐसा मोहजाल बनाते हैं जिससे छुटकारा नहीं मिलता। क्या भीष्म छुटकारा पा सकेंगे?

क्या भगवान कृष्ण सांसारिक कष्ट प्राप्त नहीं करेंगे?

कुन्ती ने अनुभव किया कि मनुष्य शरीर को धारण करने वाला दिव्य तत्त्व सामान्य मनुष्य के कष्टों और दुखों को धारण करता है। शरीर धारण करने का अर्थ ही कष्टों को पहनना है और जब दुख अवसाद इतना अनिवार्य हो तो चिंता क्या?

फिर भी मैं एक और संवाद करूंगी। मैं इतनी शीघ्रता से न असफलता का वर्णन करना चाहती हूं और न मृत्यु का।

कुन्ती के मुखमण्डल पर एक दृढ़ता की कान्ति व्यक्त हुई और बाहर प्रतिहारी ने समय परिवर्तन की सूचना दी।

कुन्ती और कर्ण

युद्ध बिल्कुल निकट आ गया था, सेनाओं की तैयारियां चल रही थीं, असंख्य सैनिक मृत्यु पर्व के लिए जैसे अपने आपको तैयार कर रहे थे, जैसे यह महोत्सव मृत्यु का महोत्सव हो।

कुन्ती ने अपने कक्ष से प्रतिहारी को बुलाने के लिए घंटी बजाई और उनकी सेविका आकर सामने खड़ी हो गई।

“जरा मेरे पास आओ, बात गोपनीय है।” यह कुन्ती की बहुत विश्वसनीय सेविका थी। इसलिए कुन्ती ने बहुत धीरे से उसे कहा, “एक रथ तैयार कराओ मैं महारथी कर्ण से मिलना चाहती हूं।”

सेविका के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। इतने दिनों बाद वर्षों के इस अन्तराल में कुन्ती

उसी पुत्र से मिलना चाहती है जिसे उसने उसके सामने पिटारी बन्द करके नदी में बहा दिया था।

“कौन-सी विवशता आन पड़ी है, राजमाता?” सेविका ने औपचारिक संबोधन से कुन्ती से पूछा।

“ऐसे ही सोचा उसे अपने मुंह से पहले बता दूं कि मैं उसकी मां हूं। क्या पता युद्ध कोई नई दिशा ले ले।”

“इतने दिनों बाद और जीवन में पहली बार, यह बात तो आप रंगभूमि में भी बताना चाहती थी।”

“तुझे मालूम तो है चाहते हुए भी क्यों नहीं बता पायी। तब मेरे पास अवसर नहीं था कि मैं उस तक पहुंच सकूँ और तब क्या वह मेरी बात मानता।” कुन्ती थोड़ा व्याकुल हो आई थी।

कुन्ती को व्याकुल देखकर सेविका ने धैर्य बंधाते हुए एक प्रश्न और पूछा—“यदि वह अब भी नहीं माना तो?”

“तो मेरा और मानव जाति का दुर्भाग्य।”

“मानव जाति का प्रश्न क्या पैदा हो गया?”

“मैं सोचती हूँ कि यदि कर्ण मेरी बात मान जाये। तो संभवतः युद्ध रुक जाये। क्योंकि दुर्योधन कर्ण के बलबूते पर ही युद्ध कर रहा है।”

“यह आपका भ्रम है राजमाता! महारथी कर्ण उनकी शक्ति का एक भाग है, सम्पूर्ण शक्ति नहीं। जैसे अर्जुन और योगीराज कृष्ण आपकी सम्पूर्ण शक्ति कहे जा सकते हैं।”

“दोनों में कोई तुलना नहीं है। फिर भी तुम रथ तैयार करवाओ, मैं एक बार अपने मन की बात अपने बेटे से कहना चाहती हूँ।”

यथासमय रथ तैयार हो गया। कुन्ती अपनी सेविका को लेकर कर्ण से मिलने के लिए चलने लगी।

रथ धीरे-धीरे चल रहा था किन्तु कुन्ती का मन बहुत तेज दौड़ रहा था। उन्होंने एक साथ न जाने कितने प्रश्न और कितनी बातें कर्ण के सामने कह दीं। कुन्ती को लगा जैसे उनकी एक-एक बात सुनकर कर्ण का मन पिघल गया हो। उनमें एक आशा का संचार हो आया। रथ और भी तेजी से दौड़ने लगा तो नदी के किनारे एक वृक्ष की छाया में रुक गया।

सेविका को रथ पर ही छोड़ कुन्ती पूजा करते हुए अपने पुत्र से मिलने पैदल ही चल पड़ी। तपती हुई नदी किनारे की रेत पर एक राजमाता चली जा रही है। सूर्य जैसे क्रोध में छिप रहे हैं। हवा जैसे कुन्ती को सहला रही है। आकाश में बादल का छुटपुट टुकड़ा कभी उसके ऊपर छाया करता हुआ अंतरिक्ष में विलीन हो रहा है।

थोड़ी दूर पैदल चलकर कुन्ती ने देखा कि कर्ण सूर्य की उपासना कर रहे हैं। अपने अंजलि से अर्घ्यदान करते हुए कर्ण कुन्ती को बालक से लगे। कुन्ती कुछ क्षण वैसे ही खड़ी रही और फिर धीरे-धीरे और आगे आ गई। अब तक कर्ण ने कुन्ती को देखा नहीं था लेकिन अर्घ्यदान देकर वे जैसे ही मुड़ उन्हें कुन्ती दिखाई दी।

“मैं राजमाता को प्रणाम करता हूँ। सूतपुत्र कर्ण का प्रणाम स्वीकार हो।”

“आयुष्मान भव।” कुन्ती ने हकलाते हुए गले से कहा।

अतीत का एक-एक पृष्ठ मन से भी तीव्र गति से दोनों के बीच में उलट-पुलटकर इधर-उधर

हो गया जैसे उसका कोई भी बिन्दु पकड़ में न आ रहा हो। और कुन्ती को लगा कि वह कुछ भी नहीं कह पाएगी। फिर भी उसने साहस बटोरा और कहा—

“तुम सूतपुत्र नहीं हो कर्ण।”

“मैं सूतपुत्र हूं। इसे मैं ही नहीं जानता, सारा संसार जानता है। जब से मैंने होश संभाला है तब से आज तक राधा मां और पिता अधिरथ की छाया में पला हूं। वे सूत हैं तो मैं सूतपुत्र क्यों नहीं हुआ?”

“मैं सूर्य को साक्षी मानकर कहती हूं तुम सूतपुत्र नहीं हो।”

कुन्ती ने कर्ण के सामने से मुंह फिराकर आकाश में चमकते हुए सूर्य की ओर देखा और फिर कहने लगी—“तुम यदि मेरी आत्मा को समझ सको तो अवश्य समझोगे।”

“मुझे आप आज अपनी यातना बताने क्यों आई हैं?”

“अवसर ही ऐसा आन पड़ता है।”

“तो कहिए राजमाता, कर्ण आपके किस आदेश का पालन करे?”

“मैं तुम्हारे सामने राजमाता बनकर नहीं आई हूं। केवल माता बनकर आई हूं। और तुम्हें पहले यह स्वीकारना पड़गा कि तुम सूतपुत्र नहीं हो।”

कर्ण ने कुन्ती की ओर देखा और उसे लगा कि वह इस स्त्री पर बहुत तीखा क्रोध नहीं कर सकता। उसके सामने वह स्त्री खड़की है जिसने उसे वंश, मान-मर्यादा से वंचित किया है। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन सम्पूर्ण व्यक्तित्व में केवल यही एक दरार है जिससे कभी-कभी इतनी विपरीत स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

कर्ण सोचने लगे, जैसे उन्हें कुन्ती के आने का आभास न रहा हो और कुन्ती भी उस स्थान के बंधन से मुक्त होकर सोचने लगी कि इसी कर्ण के कारण युधिष्ठिर ने अभी-अभी कहा था कि संधि के सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं सभी लोग युद्ध चाहते हैं। जैसे सब यह चाह रहे हों कि चारों ओर लपटें उठें और उसके बीच शांति जैसी वस्तु निर्मित हो जाये।

क्यों चाह रहे हैं सब युद्ध और मैं इसे क्यों रोकना चाहती हूं। क्योंकि मैं जानती हूं कि त्याग और तप जब असफल हो जाते हैं तो युद्ध होता है। और जब युद्ध होता है तो अनेक कष्ट अपने आप निमंत्रित हो जाते हैं।

युधिष्ठिर ने ठीक ही तो कहा था कि मैं सोचता हूं कि पांडवों के पक्ष में अर्जुन और कृष्ण हैं किन्तु कौरव पक्ष में यदि दुर्योधन किसी पर निर्भर करता है तो वह कर्ण है।

यही कर्ण मेरे सामने खड़की है।

कुन्ती को फिर से युधिष्ठिर की बातें याद आ गईं। उसने कितनी भावना से कहा था कि कर्ण को देखकर उसके मन में श्रद्धा उमड़ती है और घृणा भी होती है।

कर्ण जैसे अपनी नींद से जागा और उसने चिंतन में मग्न कुन्ती की ओर देखकर कहा, “आज्ञा हो राजमाता! आप यहां इतनी दूर से चलकर आई हैं उसका कोई न कोई तो कारण होगा ही।”

“हां, कारण तो होगा और यह कारण तुम्हें ही बताना है इसलिए यहां तक चलकर आई हूं। तुम पहले यह मानो कि तुम सूतपूत्र नहीं हो।”

“जीवन के प्रारम्भ से लेकर अब तक के सत्य को मैं कैसे नकार दूं?”

“यह भी तो हो सकता है कि जिसे तुम सत्य समझते हो वह सत्य न हो।”

“किन्तु जो मैं देख रहा हूं अनुभव कर रहा हूं वह तो सत्य मान सकता हूं। आप व्यर्थ के विवाद में न पड़ें मुझे यह बताएं कि मेरे लिए आज्ञा क्या है?”

कुन्ती को शब्द नहीं मिल रहे थे कि वह किन शब्दों में अपने ही बेटे के सामने अपनी कायरता की कहानी सुनाये किन्तु उसे कुछ न कुछ तो कहना ही पड़गा। क्योंकि जब उसने सत्य को छिपाने की क्षमता प्राप्त की तो फिर सत्य को बताने की शक्ति भी उसे प्राप्त करनी होगी क्योंकि सत्य चाहे जितना भी भयंकर क्यों न हो उससे बचा नहीं जा सकता।

“आज्ञा हो राजमाता! मुझे आदेश दें मैं राधा का पुत्र आपको प्रणाम करते हुए आपसे आज्ञा चाहता हूं।”

“आप राजमाता हैं। आपको देखने के लिए सूर्य की किरणें भी बहुत सावधानी से महल में जाती होंगी, बताइए न क्या आदेश है। कोई न कोई ऐसी बात अवश्य होगी जिससे शत्रु की मां शत्रु के द्वार पर आई है।”

कुन्ती से अब नहीं रहा गया और वह बोली, “मैं शत्रु की माता नहीं हूं तुम्हारी भी माता हूं। पांडव तुम्हारे शत्रु नहीं, छोटे भाई हैं। तुम अभी तक अपने भाइयों के साथ नहीं पले इसलिए मुझे केवल शत्रु की माता मान रहे हो।”

“मैं यह कहने आई हूं कि तुम मेरे पुत्र हो और इस युद्ध को रोकने के लिए अपने वंश में लौट चलो। पांडव तुम्हारे भाई हैं। तुमने मेरे गर्भ से जन्म लिया है। मैं तुम्हारी मां हूं।”

“मां! मां ऐसी ही होती है जिसने मुझे आज तक एक दिन भी नहीं पाला और पैदा होते ही पानी में बहा दिया हो, वह मां है। ममता का इतना अपमान मत करो राजमाता! मैं राधा का पुत्र हूं, सारा संसार जानता है।”

यह सुनकर कुन्ती आरक्त हो गई और बोली, “मुझे जो कुछ भी कहना हो कहो, किन्तु इतना सच तो अवश्य मान जाओ कि तुम मेरे पुत्र हो।”

“यही सच तो नहीं माना जा सकता। और फिर राजमाता, इस संसार में कौन किसका पुत्र है। यदि मेरी माता होती तो अपने घर के दरवाजे पर खड़की हुई प्रतीक्षा कर रही होती और वह जानती कि वह अजेय वीर कर्ण की माता है फिर भी बार-बार पूछती पुत्र तुम सकुशल तो हो।”

“रहने दीजिए राजमाता, मैं आपको जानता हूं आप युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की माता है।”

“मुझे माता नहीं मानते। केवल राजामाता मान रहे हो लेकिन मैं केवल माता बन कर ही आई हूं। मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए जब तक तुम मुझे माता नहीं मानोगे।”

“मैं लाट जाऊंगी कर्ण, तुम्हें दोष नहीं दूंगी।”

कर्ण ने सुना और जैसे उसके कानों में हजार-हजार पत्थर टकरा गये हों- दोष...दोष....दोष....। सारे दोष मेरे में ही हैं। जन्म में, कर्म में, मेरी वीरता में और मेरे भीतर एक ऐसा पुरुष है जो व्याकुलता से दोषों से रहित धरातल प्राप्त करना चाहता है।

“मैं संसार के नियामकों से पूछता हूं राजमाता कि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी की कोख में नहीं आता और मैं स्वयं नहीं जानता कि मुझे जन्म किसने दिया और राधा मुझे क्यों पाल रही है। मैं यह किससे पूछूं कि परशुराम ने मुझे शिक्षा क्यों नहीं दी?”

“आचार्य द्रोण ने मुझे अपेक्षित क्यों किया?”

“आचार्य कृपाचार्य ने भरी सभा में मेरा अपमान क्यों किया?”

मेरे से ही देवराज इन्द्र छल से कवच-कुण्डल मांगकर क्यों ले गये और भीष्म ने सबके सामने मुझे अर्धरथी क्यों कहा?

“जानती हो राजमाता! मेरी वीरता मेरी तेजस्विता सब को एक कलंक लगा हुआ है। केवल एक नारी के चुप रहने से।”

“मैं अपना दोष स्वीकार करती हूं बेटा।”

“आप कहती हैं मैं आपको मां स्वीकार करूं। यदि आप मेरी मां होतीं तो सारे अपमानों के बीच कहीं एक कोने में मुझे अपनी छाया में ले जातीं और मैं सारे ऐश्वर्य को छोड़कर चुपचाप आपके पास अपना जीवन बिता लेता। मैं इस तरह अपमानित तो न होता।”

कर्ण के शरीर में जैसे वह अपमान बोझ लहरें लेने लगा हो और उसने अत्यंत नीरस भाव से कहा—

“राजमाता मैं जातिहीन ही ठीक हूं। रंगभूमि का उच्च वंश से रहित यह कर्ण अब किसी वंश को नहीं स्वीकार करेगा।”

“तुम ठीक कहते हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैं तुम्हारे इस क्रोध के आगे मां होने के बाद भी नतमस्तक हूं। मैंने तुम्हें शक्ति से सम्पन्न रंगभूमि में अपने ही भाई के विरुद्ध लड़ाने के लिए तैयार होते हुए देखा और जिस समय सब तुम्हारे विरोध में बोल रहे थे और जब तुमसे वंश और गोत्र पूछा गया और जब तुम्हें सूतपुत्र कहकर पुकारा गया, सच मानना कर्ण, एक बार मेरे मन में आया था सारी मर्यादाएं तोड़कर मैं उस सभा में कहूं कि कर्ण मेरा पुत्र है किन्तु मैं नहीं कह सकी।”

“यह आप असत्य बोल रही हैं। आपने कभी नहीं चाहा कि आप मुझे पुत्र के रूप में स्वीकार करें। क्योंकि यदि आप चाहतीं तो अवश्य करतीं, पर आप डर गयी होंगी कलंक से। आपको सब

कुछ पता था। आपके सामने मेरा अपमान हुआ लेकिन आपने मेरा अपमान सहा किन्तु अपने मस्तक को दोषी नहीं होने दिया।”

“नहीं, नहीं कर्ण ऐसा नहीं है। तुम निश्चित जानो कि अब तक तुम्हें सूतपुत्र कहा जाता रहा, जब-जब भीम ने तुम्हारा अपमान किया, जब-जब तुम्हें किसी भी प्रकार का जातिगत संकट स्वीकार करना पड़ा मैं तब-तब अपने आपसे बहुत लड़ती रही। मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैंने कितनी बार संकल्प किया कि मैं सबकुछ सबको बताकर सत्य स्वीकार कर लूँ लेकिन हर बार यह सोच कर चुप रही कि यदि मेरे कहने पर भी तुमने उसे स्वीकार नहीं किया तो क्या होगा?”

“और अब भी क्या होगा? जब मैं अपना सब कुछ दुर्योधन को लौटा चुका हूँ। अब उससे कुछ भी नहीं ले सकता।”

“ऐसा क्यों कहते हो वत्स?”

“मैं ठीक कहता हूँ क्योंकि उसने मेरे मान की रक्षा की। मुझे अंग का राजा बनाया और जहां भरी सभा में मेरा अपमान हो रहा था वहां मेरा मान किया। मैंने तो तभी से ही अपना जीवन तन, मन, उसे सौंप दिया था। दुर्योधन के द्वारा भेजी गई प्रकाश की किरणों से मैंने अपना मुकुट बना लिया उसके शब्दों को अपना धर्म और यह अटूट मैत्री मेरे जीवन का सबसे बड़ा आधार है। क्या आप चाहती हैं कि मैं कृतघ्न होकर सुयोधन से वैर करूँ। इस समय पांडवों में जाकर मिल जाऊँ?”

“नहीं राजमाता, नहीं। यह मैं नहीं कर सकता और कोई आदेश दें तो मुझे स्वीकार है।”

“पहले मुझे माता कहो।”

“मेरे कहने से क्या होगा? लेकिन जिस तरह आपके मन में मेरे मुख से मां सुनने की लालसा है क्या कहीं मेरे मन में आपके मुंह से बेटा सुनने की लालसा नहीं हो सकती?”

कर्ण के मुख से ये शब्द निकले ही थे कि कुन्ती को लगा जैसे हजारों घंटियां अभिनव राग से भरी होकर वातावरण में गूंज गईं। सुगन्धित वायु चलने लगी, सूर्य की चमक में वृद्धि हो गई।

कुन्ती जरा आश्वस्त हुई तो कहा—“वत्स।”

और कर्ण ने मां कहकर कुन्ती के चरणों को स्पर्श किया। कर्ण बोला—“मां तुम्हारा यह उपेक्षित पुत्र तुम्हारे चरणों में पड़ा है कहो क्या कहना है?”

“मेरा तो यही कहना है कि चलो, मेरे साथ चलो। सारा वंश राज्य और वैभव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है और यदि तुम चलोगे तो निश्चित ही यह युद्ध रुक जायेगा।”

“नहीं मां, अब बहुत देर हो गई। आपने मुझे अपना पुत्र स्वीकार करने में बहुत विलम्ब कर दिया और यदि मैं आपकी बात मानकर अपने वंश में लौट चलूँ तो लोग मुझे कायर कहेंगे। और कहेंगे कि कर्ण अपनी मृत्यु के भय से इस नये सम्बन्ध को जोड़कर उस राजा को धोखा देकर

चला गया जिसने सारे अपमान के बीच उसकी मान-मर्यादा की रक्षा की थी। इससे मां मेरा ही मान नहीं नष्ट होगा, पांडवों का मान भी नष्ट होगा।”

कुन्ती को समझाते हुए कर्ण ने कहा कि आपके इस सार्वजनिक कथन के बाद भी मेरा आपके पक्ष में आना उचित नहीं है।

वातावरण की घंटियां धीरे-धीरे मंद होने लगी थीं फिर भी कुन्ती बोली—“तुमने मुझे मां कहा और चलने से मना कर रहे हो। मुझे ऐसा लगता है जैसे यह युद्ध मेरे ही दो बेटों के बीच में होगा। हो सकता है तुम जीतो या हो सकता है अर्जुन। इसीलिए कहती हूं तुम लौट चलो। यह युद्ध भी रुक जायेगा और यह विनाश टल जायेगा। धर्म की विजय हो जायेगी।”

कर्ण बोला—“जानता हूं माता धर्म की विजय होती है और जिसकी विजय हो जाती है धर्म भी उसी ओर हो जाता है। फिर भी क्या कोई जान पाया है वास्तविक धर्म को। धर्म तो हमारा आपस का आचरण है लेकिन यह भी संसार के वर्गों के साथ विभाजित हो जाता है। हमारे में दोष यही है कि हम सत्य को नहीं जान पाते, धर्म को नहीं जान पाते और हवा में तलवार चलाते हैं कि धर्म की विजय होगी।”

“मुझे लगता है मां युद्ध शुरू हो जाने दीजिए, प्रत्येक धर्मात्मा भी बड़-बड़ अधर्म और कूटनीति के काम करेगा। बस मैं तो अपने विषय में जानता हूं कि सारे ग्रह और उपग्रह मेरे विरुद्ध हैं फिर भी मुझे अपने उत्सर्ग के प्रति एक आस्था है। और आज आपको मां कहकर वह आस्था भी पूरी हो गई। मैं नहीं समझता था कि जीवन के किसी भी क्षण मुझे इतना सुख और आनन्द मिलेगा कि मैं अपनी मां के मुंह से अपने लिए यह प्रेम भरा सम्बोधन सुन पाऊंगा।”

“तो फिर अपने वंश में लौट चलो। यदि तुम चाहते हो कि मेरी सुरक्षा हो तो अपने वंश में लौट चलो।”

“मैंने कहा न यह असंभव है। क्योंकि अब मैं केवल अपना नहीं रहा हूं। मैं अपने वर्ग का अस्तित्व बन गया हूं। मेरा अस्तित्व तो बहुत छोटा-सा है। मैं इतने बड़े समूह को अब युद्ध करने से नहीं रोक सकता।”

“यह मैं जानती हूं बेटा, मनुष्य को उसकी सामाजिक नैतिकता बांध देती है और अपने होने न होने की इच्छा की पूर्ति भी वह सामाजिक संदर्भ में ही करता है। व्यक्ति की पूर्णता इतनी ही आवश्यक होती है जितनी समाज की। प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना सत्य चाहता है। मैंने अपने जीवन में एक सत्य छिपाया तो मुझे लगा कि पीड़ितों को निमंत्रण दे दिया। आज जब तुम्हारे सामने उस सत्य को स्वीकार किया है तो यह अवश्य संतोष होता है कि मैंने अपने आपको थोड़ा ऊंचा कर लिया है।”

कर्ण जैसे नियति के भविष्य के संकेत सुन रहा था, वह बोला—कैसा पूरा सत्य मां, हम सबका व्यक्तित्व खंडित है। किसी की पूर्णता घमण्ड से खंडित हो जाती है, कोई सत्ता की लिप्सा से आधा हो गया है और कर्म से छोटा हो गया है। सबकी अपनी-अपनी सीमा है। सीमा से बंधकर और सीमा से हीन होकर मनुष्य अपना ही सब कुछ तोड़ता है।

“यह क्या कह रहे हो?”

“मैं ठीक कह रहा हूँ। यह द्वार पर आया हुआ युद्ध सीमाएं टूटने का ही तो परिणाम है और सबने अपनी-अपनी सीमाएं तोड़ ली हैं। दुर्योधन ने शक्ति की सीमा, युधिष्ठिर ने सहन की सीमा और कोई यह नहीं जानता कि सीमाएं टूटने पर बाकी कुछ नहीं बचता।”

“माता अब स्थिति ऐसी है कि मैं आपका घोषित पांडु पुत्र नहीं बन सकता और आप घोषित मेरी मां नहीं बन सकतीं। और ये दोनों बातें सत्य हैं।”

कुन्ती के सामने कर्ण का व्यक्तित्व धीरे-धीरे बहुत विराट होकर खुल रहा था। उसने सोचा था उसके सत्य के स्वीकार करने से कर्ण मान जायेंगे और अपने पक्ष में आकर दुर्योधन को छोड़ देंगे। लेकिन उसका यह बेटा जितना वीर है उतना दार्शनिक भी। अब इससे क्या कहा जाये।

इस दार्शनिक दृष्टि से कैसे पार पाऊंगी। यह मेरा ही पुत्र है जो सब कुछ अपने विरोध में जानकर भी मृत्यु को गले लगाना चाहता है।

कैसे-कैसे पुत्रों को जन्म दिया है तूने कुन्ती!

एक है कि मृत्यु को गले लगाना चाहता है।

एक है कि हर समय सब कुछ छोड़ देने के लिए तैयार रहता है पर मैं क्या करूं। मुझे तो यह विचार करना ही है कि मैं युद्ध न होने दूं।

कुन्ती ने कर्ण की ओर देखा। यदि सब कुछ पूर्व निर्धारित है तो क्या हम अपने सत्य और मंगल के सारे विधान छोड़ दें?

कर्ण ने विश्वास भरी दृष्टि से माता की ओर देखा और कहा—“नहीं मां ऐसा नहीं है। हम मृत्यु को समर्पित हैं लेकिन हर पल जीते भी हैं फिर भी मैं अपने इस पूरे समूह को अब युद्ध से अलग नहीं कर सकता। समय हाथ से निकल जाता है मां और यह जो तुम कभी-कभी नगाड़ बजते हुए सुन रही हो। यह जो तैयार होने वाले सैनिकों की अस्त्र-शस्त्र की ध्वनि आती है ये सब जानते हैं कि युद्ध में विनाश होगा। सब जानते हैं कि वे किसी भी क्षण मर सकते हैं किन्तु वे युद्ध करेंगे। इसके अतिरिक्त उनकी कोई नियति नहीं है।”

कुन्ती के मन में आशा और निराशा का संचार हो रहा था। कभी उसे लगता था कि वह कर्ण को मना लेगी और कभी लगता था नहीं, कर्ण नहीं मानेगा फिर भी वे बोलीं-यदि तुम चाहो तो यह विनाश नहीं होगा। क्योंकि मनुष्य के जीवन का अस्तित्व शांति में ही फलता है।

माता की बात सुनकर कर्ण बोला—“यह तो जीवन का सत्य है मां। मनुष्य का अस्तित्व संकट में ही पलता है किन्तु आप आई हैं इसलिए एक प्रश्न करता हूँ कि मैं पांचों पांडवों में से अवसर मिलने पर भी युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव का वध नहीं करूंगा।”

कर्ण ने अपनी माता की ओर से आंखें दूसरी ओर करके कहा—“इस युद्ध में निर्णायक युद्ध अर्जुन और कर्ण के बीच में होगा। कर्ण जीतेगा तो कौरव जीतेंगे, और यदि कर्ण हार गया—”

कुन्ती की दशा बहुत विचित्र हो रही थी। कर्ण ने उसका अनुभव किया और कहा—“आप चिंता न करें मां, कर्ण नहीं जीत पायेगा। और यदि भाग्य ने कोई चमत्कार कर दिया, अर्जुन के बुरे दिन आ गये। यदि कृष्ण भी असफल हो गये तो हे मां! मैं अपनी सारी विजय, सारा वैभव, सारा धन सुयोधन को समर्पित करके तुम्हारे पास आ जाऊंगा और आप चिरकाल तक पांच पांडवों की ही मां बनी रहेंगी। आप इस छठे बेटे के लिए बहुत चिंता मत करना।”

कुन्ती से न कर्ण का यह स्नेह सहा जा रहा था और न उसकी दानी वृत्ति। पर क्या करे! एक बेटा आज बहुत दिनों बाद अपनी मां को बहुत कुछ दे रहा है। एक मां अपने बेटे को बहुत कुछ देना चाहती है। यह आदान-प्रदान संसार में कोई भी नहीं देख पायेगा। कुन्ती ने अपने कोरों से आंसू पोंछे और बोली—“मैं तो विनाश रोकने के लिए आई थी तुमने यह प्रण करके मुझे कुछ दे दिया और मेरे से बहुत कुछ ले लिया।”

कर्ण के मन में भी एक सामान्य व्यक्ति, एक पुत्रपनत पैदा हो रहा था। वह चाहता था कि अपनी इस मां के अपराध को बिल्कुल क्षमा कर दे और अपने राज्य में ले जाये और राजमाता के सिंहासन पर बिठा दे किन्तु नहीं, ऐसा वह कुछ नहीं कर सकता।

कर्ण ऐसा कुछ नहीं कर सकता जिससे उसके और पांडवों के मान में कोई भी शूल चुभे। उसने केवल इतना ही कहा—“अब जाओ मां यह युद्ध नहीं रुकेगा और युद्ध के बाद जब आप मुझे याद करेंगी तो मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। आज आपके यहां आने से मैं धन्य हो गया हूं। कम से कम अब मेरे मन में यह प्रश्न या कुण्ठा तो नहीं रही कि मुझे मेरी मां ने स्वीकार नहीं किया।”

कुन्ती कुछ कहना चाहती थी कि कर्ण ने रोक दिया और फिर से कहा—“अब बस युद्ध ही हमारी नियति को एक दिशा देगा। मेरा यह आत्मदान व्यर्थ नहीं जायेगा मां, संसार कभी न कभी इस बात को जानेगा कि एक दिन एक मां अपने बेटे के प्यार के वशीभूत होकर लोक-लाज और गरिमा को भी हटाकर उससे मिलने आई थी।”

कुन्ती के आकाश में फूल भी झर रहे थे और अंगारे भी।

राजमहल में वापिस आकर कुन्ती का मन शांत नहीं हुआ। बार-बार अतीत की बातें उसके मन को मथ रही थीं। युधिष्ठिर का भाव, कर्ण का आत्मदान अलग-अलग अर्थों में उसके मन-मस्तिष्क पर चोट कर रहा था। सहसा ही कुन्ती के मन में उभरा कि हम स्त्रियां ही सारा कष्ट सहती हैं फिर चाहे वह कुन्ती हो, गांधारी, सुभद्रा, द्रौपदी या वे भी जिनका नाम इतिहास नहीं जानता, वे सब सहती हैं। पुरुष के अहं से निकले हुए अंगारे नारी के वक्ष पर ही चोट करते हैं।

युद्ध होता है तो हो।

किन्तु यह क्या मेरे मन में कर्ण के लिए ममता जागी क्यों? क्या वास्तव में यह ममता उसी के लिए जागी या मुझे अर्जुन के लिए कर्ण के संदर्भ में भय लग रहा है।

कुन्ती की अन्तरंग सखी भैरवी ने कक्ष में प्रवेश किया और राजमाता को चिन्तामग्न पाया तो कहने लगी—“इतनी चिंता किस बात के लिए है?”

कुन्ती को अपना मन खोलने के लिए एक अवसर मिल गया, वह कहने लगी—“आज मुझे डर क्यों लग रहा है और यह डर है या ममता। मैं नहीं समझ पाती। यदि यह डर है तो किस बात का और अगर ममता है तो किसके लिए है? और कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं मानव जाति का विनाश अनुभव करके उसके लिए चिंतित हूँ?”

भैरवी ने बहुत ध्यान से अपनी सखी राजमाता की ओर देखा और कहने लगी, “आप बिलकुल ठीक कह रही हैं लेकिन आपके सोचने से युद्ध नहीं रुकेगा। आप चाहती हैं कि आपके पुत्रों की रक्षा हो। आप चाहती हैं कि प्रत्येक मां का पुत्र सुरक्षित रहे किन्तु ऐसा होता है क्या? इन छोटी-छोटी बातों को लेकर संघर्ष, युद्ध और यदि इसको भी छोड़ दिया जाये तो प्रकृति का विनाश—हमें सब कुछ सहना होगा।”

भैरवी चली गई और कुन्ती अकेली रह गई।

कुन्ती को इस प्रकार अपना अकेला रहना कई बार बहुत अच्छा लगता है और कई बार वह समझ नहीं पाती कि उसके मन में घबराहट किस बात की है और अभी-अभी तो सूचना मिली है कि कर्ण ने भीष्म के सेनापतित्व में युद्ध न लड़ने का निश्चय किया है।

क्या करता है यह पुत्र, बड़-बड़ी विचित्र बातें। और कुन्ती ने उठकर कलाकार द्वारा बनाया गया कर्ण के बचपन का चित्र उठाया और उसे देखने लगी।

यह सच है बेटे कि जब मुझे चाहिए था कि मैं अपना सारा मातृत्व तेरे ऊपर लुटा देती तब मैंने तुझे जल तरंगों पर छोड़ दिया और आज तुझसे मिलकर आने के बाद एक अपराधबोध जग रहा है।

यह मेरे कक्ष में प्रकाश कैसा?—कुन्ती ने जैसे ही आंखें ऊंची कीं वैसे ही सूर्य ने धीरे-धीरे प्रवेश किया और द्वार पर खड़ होकर ही कहा—“अपराध इसलिये कि अपने पुत्रों को लेकर आज तुम्हारे मन में पहली बार संकट उत्पन्न हुआ। तुमने पहली बार सोचा है कि एक के न रहने पर कैसा अनुभव होगा? और यही तुम्हारा अपराध है कि तुम अब इस विषय में सोचने लगी हो। क्योंकि इसी से द्वन्द्व पैदा होता है।”

“आप, आप अचानक कैसे आ गये?”

“जब मन की दबी हुई पुकार प्रश्नों को जन्म देने लगती है तो और तो कोई नहीं देखता लेकिन जो मन में बैठे हुए राग-अनुराग के तत्व होते हैं उससे वे प्रश्न छिप नहीं सकते। और तुम्हारे यहां तो सब युद्ध की तैयारी कर रहे हैं ऐसे में किसी को मन की बात सुनने का अवसर ही कहाँ मिलता है।”

“कैसे आना हुआ आज?”

“हां, तुम कह सकती हो कि तुमने किसी भी मंत्र की शक्ति से मुझे नहीं बुलाया फिर भी मैं आ गया क्योंकि तुम्हारे और मेरे बीच एक सेतु तो है।”

कुन्ती सहमती हुई बोली—“आज तो वह सेतु भी मेरा अपना नहीं है। और मैं द्वन्द्वों में फंसी हुई

यात्रा कर रही हूँ। मैं तो कुछ भी नहीं कहती किसी से जो भी कुछ मैंने समर्पित किया आपको और जो कुछ भी पाया आपसे मेरे पास तो कुछ भी नहीं रहा। व्यर्थ हो गया है सब कुछ। अब मैं क्या करूँ?”

कुछ भी नहीं किया जा सकता। या तो याद किया जा सकता है उन मधुर क्षणों को या फिर वर्तमान में चारों ओर आग लगी है उसे अनुभव किया जा सकता है। उसमें जलते हुए चिल्लाया जा सकता है। जानती हो—जब हम पहली बार मिले थे समय ठहर गया था, भाव और विभाव मिल गये थे एक-दूसरे से और उस अपूर्व संयोग में बिजली का कौंधना और तुम्हारा कांपना बिल्कुल एक जैसा लग रहा था और ऐसा भी जैसे लहरों के बीच अंगारे उड़ रहे हो और अंगारों के बीच लहरें।

कुन्ती इस अवस्था में भी इस उक्ति से थोड़ा-सा लजा गई और बोली—“जो कुछ भी था, जैसा भी था वह सब सत्य था उसे न भुलाया जा सकता है और न इनकार किया जा सकता है। उसे क्यों याद करते हैं आर्य। वह अपने आपमें सत्य था। हां नैतिक था या नहीं मैं नहीं, जानती।”

कुन्ती की ओर स्नेह भाव से देखते हुए सूर्य बोले—“जो सत्य होता है वह हमेशा नैतिक होता है। फिर चाहे वह व्यक्ति का हो चाहे समाज का।”

“आप ठीक कहते हैं। मैं अपने मन के गहरे द्वन्द्व से लड़कर यही जान पाई हूँ कि सामाजिक नैतिकता से अलग एक व्यक्तिगत नैतिकता होती है और कभी-कभी उसको स्वीकारने और अस्वीकारने से बहुत भय लगता है। स्वीकारा जाता नहीं और अस्वीकार करने में कष्ट होता है।”

“तुम्हारा द्वन्द्व यही है कि तुम दोनों में से किसी की भी रक्षा नहीं कर पाई कुन्ती। क्योंकि जो चाहा और जो प्राप्त किया उसके बहुत बड़ा अंश को संसार के सामने नहीं रख पाई।”

कुन्ती ने बहुत ध्यान से सूर्य की बात सुनी और बोली—“संभवतः आप ठीक कहते हैं। मैं यदि अपने मन को समझा पाती और साहस से जीवन के नैतिक और अनैतिक प्रश्न को झुलसा लेती तो इतना बड़ा अपराध न करती। वह क्षण कितना भयानक रहा होगा जब मैंने यह अपराध किया। मैंने संपूर्ण अपने को पराया क्यों बनने दिया।”

कुन्ती कहती जा रही थी और अब उसकी आंखों में आंसू छलछला रहे थे। राजमाता का गौरवमय पद, भीम, अर्जुन जैसे वीर पुत्रों की मां जिसके एक आदेश पर कुछ भी हो सकता है वह रो रही है, एक वेदना से भरी जा रही है। इसे इस वेदना से मुक्ति तो देनी ही होगी।

सूर्य को पहली बार लगा कि कुन्ती अपने पुत्र को लेकर बहुत अधिक मानसिक यातना सह रही है। आज उसे क्यों लग रहा है कि वह किसी नितांत अपने को अपना नहीं बना सकी। वे उसे समझाते हुए बोले—“बहुत कुछ होता है व्यक्ति के करने से। बहुत कुछ होता है उसके समझने से और इस जीवन में बहुत कुछ होता है करने समझने से। बाहर के निर्णय में तुमने जो समझा था वह तुम्हारा सत्य था, तुमने जो किया—वह अवसर की विवशता थी। कभी-कभी सत्य और विवशता के बीच एक ऐसा घटना चक्र जन्म ले लेता है। होता है कारण से लेकिन अकारण हो जाने की भावना मूर्त को अमूर्त कर देती है व्यर्थ ही।” सूर्य किसी भी तर्क से कुन्ती को सान्त्वना

देना चाहते थे क्यों कि उसकी व्याकुलता उन्हें भी तंग कर रही थी। कुन्ती बोली—

“तो फिर क्या करूँ मैं? एक माया चारों ओर से घेरती चली जाती है। एक भय उसी तरह प्रताडित करता है। ‘कहूँ न कहूँ’ के बीच घिर गई हूँ, मैं किससे कहूँ? कैसे कहूँ? मानेगा कौन?”

“गोपनीय अब तक जो मन में छिपा रखा था, वह कहने के बाद भी युद्ध नहीं टल पाया तो फिर क्या पाऊँगी? कहने के बाद भी पुत्रों के प्राणों पर युद्ध मंडराता रहा, नैतिक भी अनैतिक बन मुझको ही सालता रहा तो क्या होगा।”

कितना छोटा है व्यक्ति मूल्यों के सामने। समूहगत मूल्यों के सामने।

क्योंकि वह जो कुछ सोचता है करना चाहता है। कभी-कभी समाज उसे वही नहीं करने देता। इस पर सूर्य ने कहा—

“यह स्थिति आज है। पहले भी ऐसी ही थी और कल भी ऐसी रहेगी। सर्वकाल, सर्वयुग—सारे समाजों में भिन्न-भिन्न सभ्यता के मानदण्ड होते हैं” नीति भिन्न होती है—व्यक्ति का व्यक्ति से, व्यक्ति का समाज से व समाज से मूल्यगत द्वन्द्व और संघर्ष आचरण का निरन्तर होता है। ओर ऐसी स्थिति में मनुष्य या तो पराजित हो जाता है या अपनी शक्ति से समाज को बदलता है।”

पुनः कुन्ती बोली—“मैं तुम से ही पूछती हूँ आर्य, जो कुछ भी तुम्हारे साथ जाने-अनजाने हुआ और एक सामाजिक मर्यादा में औरों के साथ वह या फिर मेरे ही साथ बार-बार होता रहा तो फिर एक इतना बड़ा असत्य क्यों? और दूसरा उसकी तुलना में मर्यादित, नैतिक और सर्वस्वीकृत क्यों? ऐसा क्यों होता है कि जो बात समाज स्वीकार कर लेता है वही उचित हो जाती है, और दूसरी अनुचित कह दी जाती है।”

“यही द्वन्द्व संस्कृति को रूपायित करता है। यही द्वन्द्व व्यक्ति के मन में प्रश्न उठाकर उससे समाज की जड़ता तुड़वाता है। सत्य के शिखरों के रूप, ऐसे समय में बदल जाते हैं।” घटनाएं एक-सी होती हैं प्रकृति में प्रसंग के भेद से किन्तु उनके अर्थ बदल जाते हैं। और भी यह समाज का ही सत्य है कि जो कुछ समर्थ कर सकता है सहज ही वही असमर्थ के लिए अपराध होता है। जानती हो—सामर्थ्य शक्ति का भेद केवल वर्गों में ही नहीं परिवार और व्यक्ति की चेतना में होता है।

“कभी कभी चेतना का एक शक्तिशाली अंश दूसरे अंश का शोषण कर लेता है। बस यही द्वन्द्व है मानव चेतना में और हम जानते हैं ऐसे ही द्वन्द्व से समय के विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। व्यक्ति के भीतर का सत्य कभी बाहर का निर्णय अनिर्णय का मार्ग बदल लेता है।”

“उस समय तुम्हारी चेतना का भाव खण्ड सामाजिक नैतिकता की सीमा के खण्ड से शोषित हो गया था। सत्य दब गया था। और आज जैसा भी, जो कुछ भी तुम्हारे मन में है निरन्तर समय के गतिमान द्वन्द्व से उपजा है। सत्य को छिपाया था, पीड़ा में वर्षों रही, सत्य को व्यक्त करा होगा। यदि पीड़ा थी तो भी सन्तोष कम नहीं होगा।”

सूर्य ने पूरे तर्क और भावना के आवेग में कुन्ती को यह समझाना चाहा कि जो कुछ भी हुआ है, वही नियति है और कुछ नहीं।

कुन्ती बोली—“मैं इतने बड़का मूल्यगत हास के बीच कब से जी रही हूँ। उस समय विद्रोह कर देती तो सम्भव था आगे की अनैतिक श्रृंखलाएं न बनतीं, युद्ध नहीं होता। यह अपने पुत्रों की प्राण रक्षा का प्रश्न अपने ही पुत्रों के सामने न होता। और अब जो कुछ है वह बड़ा भयंकर है क्योंकि अपने वश में नहीं है।”

“सूर्य ने कहा, “लगता है प्रश्नों के भयंकर घेरे नहीं, ममता के गुंजलक तुमको सताते हैं। कर्ण और अर्जुन में कौन है अधिक प्रिय और तुम इनमें से चाहती हो किसकी रक्षा, तुम्हीं को ज्ञात नहीं। क्योंकि अब स्थिति यह है कि सम्भवतः तुमको इन दोनों में से कोई एक चुनना पड़ेगा। यह युद्ध अब अवश्यम्भावी लगने लगा है।”

“मेरे अन्तर्द्वन्द्व की इतनी-सी बात नहीं, इससे भी बड़ा प्रश्न सामने पाती हूँ। मैं कभी-कभी लगता है—चिल्लाकर पूछूं सारे धर्म, नैतिकता, मर्यादा के रक्षकों से कि वे अन्तर कहां करते हैं, और कैसे अन्तर करते हैं? आपके आह्वान और धर्म के आह्वान में, वायु के बुलाने और इन्द्र के निमंत्रण में। सबके सब मेरी ही भावना से उपजे हैं। सबके सब मेरी ही विवशता के फल हैं।”

“सप्तपदी इतनी निर्णायक होती है, क्या कर्म की समानता में भेद कर देती है। मेरी यह पीड़ा—कौन समझेगा आर्य? क्या करूँ अकेली थी नदी के किनारे जब प्राणों का अंश प्रवाहित कर रही थी, मैं आज भी वैसी ही निपट अकेली हूँ अपने उबलते रक्त के छींटों में, कहने न कहने की यातना लिए हुए। और मैं कर भी क्या सकती हूँ। जब भी मैंने इस बात पर विचार किया हमेशा एक द्वन्द्व में फंस गई।”

“किन्तु तुम चुप रहें रंगभूमि के दृश्य में और तुमने नहीं कहा कुछ द्रौपदी स्वयंवर के समय। तुम तो नहीं थी वहां, किन्तु कभी भी जब, सत्य पकड़ पाता है मानव, अपने से बाहर होकर कह सकता है या फिर अपने ही में सत्य स्वीकारता हुआ किसी भी अपराध का परिशोध कर सकता है। यदि उस समय तुम कर्ण को अपना पुत्र स्वीकार कर लेतीं तो यह विपत्ति नहीं आती।”

“यदि मैं जानता जन्म पूर्वजों का आर्य उनके संदर्भ में नैतिक-अनैतिक प्रश्नों को सरल होते-तो आज कहे देती हूँ इतनी बड़ी यातना कभी नहीं सहती। वर्णित कर देती सत्यवती, गंगा के आचरण की नैतिकता? ज्येष्ठ धृतराष्ट्र, विचित्रवीर्य और विदुर सबकी गाथाओं की नैतिकता खोलती और फिर पूछती मेरा अपराध क्या था? तब एक नैतिक साहस के सच में अपने ही पुत्र को पराया नहीं होने देती।”

“तुम जानती नहीं सामाजिक नैतिकता भिन्न नहीं होती है वैयक्तिक नैतिकता से! वह केवल समर्थों का आडम्बर मात्र है। जितने भी निर्णायक, मूल्यगत अवयव हैं हमारे समाज के—सब सापेक्ष हैं। उनका स्वीकारने का बल ही अपेक्षित है चाहे हो व्यक्तिगत या फिर समष्टिगत।”

“हम व्यक्ति के दायित्व को समाज से अलग कर देते हैं, किन्तु ऐसा होना नहीं चाहिए।”

यह सुनकर कुन्ती बोली—“अच्छा किया देव! इस द्वन्द्व की मरुभूमि में आपने नैतिक साहस दिया है मुझे। अब मैं तैयार हूँ—कि सत्य को स्वीकार करूँ। अपने ही अंशों को दारुण संग्राम में एक बार देख लूँ। गोपनीय सत्य को व्यक्त करने के बाद नैतिकता कौन से धरातल पर विभूषित होती और जिसे अब तक अनैतिक कहते हैं लोग सत्य कितना है वह?”

“सत्य की रक्षा के लिए सब कुछ कह दूंगी मैं जिसे अब तक प्राणों से दूर किया, उसे निज प्राणों में समाकर देखूंगी। चाहे कहे कोई कुन्ती डर गई थी पुत्रों के हित! किन्तु इस युद्ध की गहराती छाया में एक प्रण करती हूँ। गोपनीय सत्य को व्यक्त करने के बाद चाहे मरूँ या मैं रहूँ, घृणा की पात्र बनूँ या किसी के स्नेह की, किन्तु मैं कहूंगी सारे आवरण चीर कर—मेरा पुत्र कर्ण है—कर्ण मेरा पुत्र है।”

“मेरे पुत्र! मेरे प्यार! मेरे....कर्ण!”

और देखा कि वहां कोई नहीं। आर्य आर्य। चले गए। उन्हें जाना ही था। किन्तु इस समय मुझे अपने इस ज्ञान में दायित्व का परम बोध सक्षम और समर्थ कर रहा है। अब उठती हूँ। उठती हूँ आर्य मैं अब अपने में उठती हूँ। क्योंकि यह कुन्ती अभी जीवित है कि सत्य को स्वीकार कर सके।

कुन्ती ने कक्ष के बाहर खड्ग होकर देखा पुरोहित कह रहे थे। भोर हो गई है, सब राजपुरुष जागें, भोर हो गई है सब प्रजाजन जागें। भोर हो गई है सब सैनिकगण जागें।

कुन्ती पुरोहित को देखकर सोचने लगी—पर जैसे पुरोहित सहसा रुक गया—सोचने लगा।

भोर हो गई है सब जाग गये होंगे, चलता हूँ राजमाता के कक्ष में। पूजा का विधान अभी पूरा करना है। आज का दिन शेष है। और फिर कल से भयंकर युद्ध आरंभ हो जायेगा, धर्म की रक्षा के लिए, सत्य की रक्षा के लिए, न्याय की रक्षा के लिए।

धर्म, सत्य, न्याय। अब केवल शब्द रह गए हैं। अर्थ राजनीति के दावों में खो गया। धर्म, जो सत्य आचरण का प्रतीक है। त्याग का, तप का, बंधुत्व का सार है उसे अब केवल मतवाद में बदलकर राजनीति की शक्ति संकीर्ण कर रही है। प्रत्येक व्यक्ति शांति के लिए शस्त्र एकत्रित करता है। युद्ध शांति के लिए—युद्ध—अधिकारों के लिए समर्थ की इच्छा को व्यापकता देने के लिए।

युद्ध किसी को भूमि न देने के लिए, युद्ध धरती पर, सागर पर, राज्य के लिए। धर्म कहां आता है—युद्ध के विधान में। धर्म तो मानव को मानव से जोड़ता है, स्वयं को सुसंस्कृत कर विराट बनाता है, युद्ध में क्या संस्कृति? और क्या विराट रूप?

फिर भी पुरोहित! मंगल विधान करो।

सत्ता-संघर्ष में...सार्वभौम मानव का पक्ष त्याग अपने अन्नदाता के भूगोल की रक्षा के मंत्र पढ़ो...वेद मंत्र!

पुरोहित कुन्ती के सामने आकर खड्ग हो गए विनम्र! उन्हें देखकर कुन्ती कहने लगी—

“पूजा का विधान पूर्ण हो गया पुरोहित जी। आप चाहें तो और मंत्रोच्चार से अपना संतोष करें। अब मुझे मंत्रों के उच्चारण से पूजा नहीं करवानी। मेरी पूजा हो गई।”

“कैसे राजामता ?”

“कुछ पूजा पुरोहितजी आत्मज्ञान से सम्पन्न होती है। और आत्मज्ञान स्थितियों के सत्य को स्वीकारने से आता है। मेरे संदर्भ में सत्य स्पष्ट हो गया और जिस क्षण से मैंने आत्म सत्य पाया है, लगता है पूजा पूरी हो गई है....। अब किसी मंत्र के उच्चारण की आवश्यकता नहीं रही।”

पुरोहित ने सुना और कहा—“मैं राजकुल का पुरोहित राजमाता को आशीष देता हूं। शत्रु सब नष्ट हों। युद्ध में पांडवों की विजय हो। धर्मराज युधिष्ठिर चक्रवर्ती सम्राट बनें।”

पुरोहित चले गए! कुन्ती अपनी सोच में डूब गई। वह सहसा उत्तेजित हो उठी—

हां, हां, मैं सक्षम हूं सत्य को छिपाने में।

हां, हां मैं सक्षम हूं पीडना झेलने में।

मैंने स्वयं भी पीडना झेली और द्रौपदी को भी पीडना दी।

द्रौपदी! द्रुपद सुता। तुझको मैंने विभाजित कर दिया। क्यों किया? क्यों किया? कुन्ती उत्तेजना में हांफने लगी।

तुझे पांचों पुत्रों की पत्नी बनाना क्या राजनीति प्रेरित था?

राजकुल की एकता बनाने की लालसा थी या फिर अपने बहु पतित्व की पुष्टि में सामाजिक स्वीकृति पाने की भावना थी। सोच नहीं पाती हूं क्या था उस आज्ञा में।

द्रौपदी!—तूने विरोध क्यों नहीं किया? तेरी ही एकमात्र स्वीकृति से सारे नीतिज्ञ, धर्मशास्त्र अवगाहते—पांच पुरुषों की पत्नी के पक्ष में जन्म-जन्मांतरों की कथा उकेरते रहे। किसी ने मुझे कुछ नहीं कहा।

सारे धर्मशास्त्र, सारे नीतिज्ञ बार-बार शब्द को अपने पक्ष में करने में सक्षम हैं। यदि ऐसा हो सकता है द्रौपदी के लिए वहां नैतिकता अवरोध नहीं बनती है। तो फिर, यदि कर्ण की बात मैं कह देती। चुप हो जाते धर्मशास्त्र? चुप हो जाते वे नीतिज्ञ? क्या कहते वे।

नहीं! नहीं मेरी ही कायरता थी। मैं ही अपने बेटे को अपना बेटा न कह सकी।

एक सत्य को छिपाकर कितना बड़ा अपराध किया है मैंने।

कुन्ती ने प्रतिशटी को बुलाकर अपना मन शांत करने के लिए द्रौपदी को बुला भेजा। कुछ समय बाद द्रौपदी ने आकर कहा—

“मुझे बुलाया मां। आज्ञा दो! क्या करूं?—आज आपने मुझे बुलाकर मान दिया। धर्मराज कह रहे थे आप किसी बात से चिंतित हो रही हैं। आज्ञा दीजिए।”

“आज्ञा देने की स्थिति में नहीं हूं आज! आज तो जैसे एक जीवन का इतिवृत्ति तेजी से आंखों के सामने खुलता है, उसमें कहीं तुम हो, कहीं मैं...और कहीं आकाश-सी सीमाहीन बेचैनी। एक दिन शेष हैं महासंग्राम में। मुझे लगता है इस युद्ध को मैं रोक सकती थी। और नहीं तो अपनी और तुम्हारी इस गाथा में इतनी दुखी न होती।”

“आश्चर्य है माताश्री, आप कह रही हैं सारे इतिवृत्त में आप, केवल आप हैं और मैं। और यहां जितने भी अन्य लोग हैं जो शेष हैं वे किस कारण से महत्वहीन हो गए।”

“जिनके जीवन की विराट प्रयोगशाला में हम नन्हे बिन्दु हैं।”

“भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र और श्वसुर पांडु भी वे सब कैसे महत्वहीन हो गये। सारा रसायन तो उनकी आज्ञा का है उनके अधिकार का, बचता है शेष वह घृणित राजनीति का है। फिर इस वृत्त में केवल आप! केवल मैं!! यह मैं पहली बार आपसे सुन रही हूं कि इस युद्ध के प्रसंग में मैं और केवल आप इतने महत्वपूर्ण हो गए।”

“केवल मैं! केवल तुम! इसलिए कि यातना अन्दर की, बाहर की, मैंने सही थी कभी, और फिर बाद में तुमने सही है। क्या तुम अपने इस जीवन से सुखी हो? क्या ऐसा नहीं कि राजनीति में जो कुछ तुम्हारे सिर पर लाद दिया तुमने उसे स्वीकार कर लिया। यही है यातना।”

“क्या कह रही हैं आप! कौन-सी यातना? जब से इस राजकुल में आई हूं माता मैं तब से जीवन की सारी उपलब्धियां एक-एक सांस ही स्वाभाविक बन गई।” द्रौपदी ने शक्ति भरकर कहा और कुन्ती की ओर देखने लगी।

द्रौपदी फिर बोली—“कि हे माता! स्थिति भी तो देखने वालों की दृष्टिभेद से दूसरी हो जाती है।”

कुछ लोग समझते होंगे कि जो मेरे जीवन में जो कष्ट है, जिनको समझते हैं लोग सांसारिक कष्ट मेरे लिए तो वे परीक्षा के क्षण थे। और परीक्षा किसकी नहीं होती मां! मेरी परीक्षा हुई और मैं जानती हूं आपने भी समय-समय पर परीक्षा दी है।

“मुझे अपने पुत्रों की पत्नी पर गर्व है। जानती हूं, तुमने बहुत अपमान सहा, हंसकर सहन किया जंगल के कष्टों को। यही नहीं अर्जुन द्वारा जीतो जाकर भी तुम्हें शेष भाइयों की पत्नी भी बनना पड़ा, मेरी आज्ञा की मर्यादा के लिए। तुमको क्या इसका बिल्कुल भी क्षोभ नहीं? क्या तुमने कभी नहीं सोचा कि मैंने तुम्हारे जीवन में आपत्तिजनक स्थिति ला दी थी।”

“नहीं मां! नहीं! अब ऐसा मत कहो! किन्तु वह अवश्य है कि आज धन्य हुई माता मैं—माता मैं

धन्य हुई। आज इस युद्ध की भयंकरता के बीच किसी ने इस राजकुल में मेरे व्यक्तित्व को स्वीकार किया है। धन्य हुई माता मैं....। आपके अनायास इस तरह करने से, अकस्मात् आपके इस तरह पूछने से लगता है मैं भी....व्यक्ति हूं, वस्तु नहीं। मुझे मेरा मान लिया गया। किन्तु माता-क्या सचमुच मेरे विभाजन पर आपको क्षोभ है?”

कुन्ती को इस प्रश्न की आशा थी किन्तु यह प्रश्न तुरन्त आ जाएगा, उसने नहीं सोचा था। कुन्ती बोली-

“मैं सोच नहीं पाती हूं, उसको देखे बिना, उस घोषित आज्ञा का औचित्य कितना था? था भी...या नहीं?” और यह कहकर कुन्ती ने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। जैसे वह द्रौपदी का सामना नहीं करना चाहती हो! द्रौपदी ने कहा-

“औचित्य-अनौचित्य की बात बहुत पीछे छूट गई है मां! अब वह यथार्थ ही मेरा नैतिक आचरण है। अब उसके विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं सोचती। मैंने पूरी निष्ठा से अपनी सम्पूर्ण भावना से पांचों पांडवों को पति स्वीकार किया। मैंने पत्नीत्व निभाया भी है किन्तु कभी-कभी मुझको भी लगता रहा कि निष्ठा को बलात स्वीकारा है मैंने, कक्ष में होते हैं-जब कभी धर्मराज या कभी भीम या नकुल-सहदेव अपने में गहन द्वन्द्व अनुभव करती हुई केवल परिचालित-सी इधर-उधर घूमती, सारे कर्तव्यों का पालन करती हूं। चाहे वह शैया का कम्पन हो बाहर से या फिर हो अन्तर का प्रेमपरक आलोडन, हाथों की क्रिया हो या अधरों की प्रतिक्रिया। पूरे व्यक्तित्व का भावमय संघर्षण....आज माता! क्षोभ के प्रश्न पर माता मैं कहती हूं निस्पंद बनी रहती हूं। स्पंदन की प्रतीक्षा में...”

कुन्ती ने पहली बार द्रौपदी के मुख से सत्य का अनुभव किया। उसे लगा कि वह उचित ही कह रही है। फिर भी पूछ लिया-

“और अब अर्जुन...”

द्रौपदी भी जानती थी कि आज सास, सास नहीं है। एक मां होकर मन का थाह लेना चाहती है। वह बोली-

“यह प्रश्न कैसा मां?”

कैसे कह पाऊंगी अनुभव के गहरे क्षण, अनुभव के गहरे क्षण कितने तरल होते हैं। फिर भी आंधी के आवेग से आते हैं कक्ष में और जलप्रवाह से रोमावलि भिगोचर चारों तरफ फैल जाते हैं। चारों ओर ही नहीं, अन्तर ही अन्तर में बिना ध्वनि बिना रूप, ओस के कणों से, मुंदी हुई पलकों में धीरे-धीरे आ जाते हैं...और....मां!

मृग छोने से आकर छिपकर बैठते हैं।

एक विराट नाद होता है चारों ओर और दो बिन्दुओं से परस्पर विलीन हो कभी-कभी सीपी, और कभी-कभी मोती से लहरों के गर्जन में आलिंगित होते हैं।...आपने यह कैसा प्रश्न पूछ लिया मां और क्या मैं इस प्रश्न का उचित उत्तर दे पाऊंगी। आप नहीं जानतीं कि मुझे वस्तुतः प्राप्त

किसने किया था। सब कुछ तो आपको ज्ञात है।

“अर्जुन का मोह तुम्हें बहुत है द्रौपदी?”

“यह फिर मेरी प्रार्थना को सुन लेने जैसा प्रश्न! पर मां!”

मोह! मोह! मातृश्री, मोह बहुत छोटा है। अनुभव के वृत्त से पार्थ की परछाईं स्मृति में आते ही, हाथों पर...पलकों पर...मन की तरंगों पर...इन्द्रधनुष उतरता है! और मैं जैसे ही ठहराना चाहती हूं ओझल हो जाता है। मैं उसे पकड़ नहीं पाती हूं, और भी यह सच है मां मैं कितना प्रयास करती हूं, किसी भी रूप में उनकी भुजाओं में काया बन रह सकूं, किन्तु काया कहां रह जाती है अंत में मन और प्राण एकमेव होकर...मुझे मेरे अस्तित्व से अलग कर देते हैं। वे मिलकर एक विराट संश्लेष बना देते हैं! उनके सहवास में मैं नहीं होती हूं। मुझे नहीं ज्ञात मां मैं कहां होती हूं? मंदिर में जलती हुई गंध-शिखरों सा मात्र आत्मा का अस्तित्व रह जाता है। और मैं उनमें कहीं खो जाती हूं।”

कुन्ती ने अनुभव किया कि द्रौपदी के मन में विभाजन का कष्ट तो नहीं रहा किन्तु अर्जुन के प्रति उसका मोह अधिक है। उन्होंने फिर कहा “और अब चारों ओर युद्ध का गर्जन है। क्या तुम्हें अभी भी शंका नहीं व्यापी है पति के अहित की, पुत्रों के अमंगल की। और क्या तुमने कभी विचारा है—युद्ध रुक जाये...। विनाश के अदृश्य अंगारे बरसने को व्याकुल हैं व्योम में रुक जायें।....क्या तुम नहीं चाहती कि युद्ध रुके।”

द्रौपदी को समझ नहीं आया कि इस समय माता उसे युद्ध के विषय में कुछ भी कहने के लिए क्यों कह रही है। फिर भी उसने साहस के साथ कहा—

“नहीं! नहीं! मातृश्री युद्ध से भय नहीं है मुझे। मैं सदा युद्ध की छाया में पली हूं और फिर युद्ध को निमंत्रण मैंने नहीं दिया, आपने भी नहीं, किसी भी पांडव ने युद्ध नहीं चाहा था, वे तो सन्तुष्ट थे पांच ग्राम लेकर ही।”

“यह तो दुर्योधन की बढती हुई लिप्सा थी, सरलता के सामने, त्याग की तुलना में...। और फिर जिस पर उसे पूरा भरोसा है। राधा का पुत्र! कर्ण! कितनी ही बार जिसे पराजित कर चुके हैं आर्य! शौर्य पर अपने वह बहुत गर्व करता है। कितना बड़ा भ्रम है? केवल प्रवंचना! मैं केवल उसे शत्रु मानती हूं। यदि वह चाहता तो युद्ध रुक सकता था। विनाश रुक सकता था। ध्वंस नहीं होता यह।...किन्तु वह पिपासु है, आर्य के रक्त का...। मां! मैं उससे घृणा करती हूं।”

कहते कहते कुन्ती के सामने ही द्रौपदी का मुखमंडल क्रोध से भर गया। वह बोली—

“मां! मैं चाहती हूं—आर्य उसका कटा हुआ मस्तक मेरे चरणों में डाल दें। मुझे तभी शांति मिलेगी। उसने मुझे बहुत सारे अपशब्द कहे हैं मां! उसकी प्रेरणा से मेरा अनेक बार अपमान हुआ है। मैंने उसकी चढती हुई डोरी पर से अपनी वरमाला हटा ली थी न। मैंने अस्वीकार कर दिया था उसे।”

“कैसी अनर्गल बातें करती हो, किसी की मृत्यु की कामना अमानवीय है। कर्ण भी किसी का

पुत्र है। और सारे रूप को शत्रु न मान करके केवल एक व्यक्ति को शत्रु मानना अनुचित है। भयानक कर्म तो औरों ने किए हैं। कर्ण ने नहीं।”

“आपका पक्ष है यह—आप माता हैं, स्नेह से भरी हुई, किन्तु मैं विभाजित हूँ—विभाजित और अपमानित भी। मुझे मेरा अहं बार-बार कहता है—प्रतिकार हो, युद्ध हो, ध्वंस हो, विनाश हो।”

“द्रौपदी असाधारण प्रतिहिंसा की मूर्ति है, द्रौपदी दुःशासन के रक्त की प्यासी है, द्रौपदी कर्ण का मस्तक चाहती है, द्रौपदी अपने विभाजन का मूल्य, आपसे नहीं धर्मराज से नहीं—व्यक्ति रूप में किसी से भी नहीं, सारी व्यवस्था से चाहती है जीवन में। मातृश्री आप बहुत विचलित हैं युद्ध से और मैं प्रसन्न हूँ।”

कुन्ती को लगा जैसे द्रौपदी आज अपने मन की सारी भावनाएं व्यक्त करना चाहती है। उससे अब कुछ नहीं कहा जा सकता। कुन्ती बोली—

“मैं नहीं विचलित हूँ, तुम बहुत क्षुब्ध हो, जाओ विश्राम करो। अब तुम्हारे से इस विषय पर क्या कहना।”

“हां, हां, विश्राम करूंगी मैं, अपने अनेक विभाजित अंशों को लेकर, किसी एक निर्णय के क्षण तक, केवल विराम है। अपनी ही प्रतिहिंसा की अग्नि में जलकर भस्म हो जाने की कामना के साथ केवल विश्राम है। अब तो सेना लड़गी रणभूमि में। वीर मरेंगे। स्त्रियां तो विश्राम करेंगी अपने घरों में।”

कुन्ती ने सुना और सोचा कि क्या किया जाए, व्यक्तित्व का विभाजन और अपमान, सरल मनुष्य को कठोर बना देता है। किसी का दोष नहीं, स्थितियां मनुष्य से अधिक बलवान हैं। हम सब स्थितियों के दुर्दय संघर्ष से परिचालित होते हैं।

कुन्ती ने देखा द्रौपदी चली गई, किन्तु यह क्या झुके-झुके से युधिष्ठिर कैसे आ रहे हैं। इन्होंने मेरा और द्रौपदी का संवाद सुन लिया है। अब हो भी क्या सकता है। यह निश्चय तो कोई भी नहीं कर पायेगा कि सच किस ओर है।

“उचित नहीं था मां कुछ भी सुनना! फिर भी जितना सुन पाया हूँ उससे मुझे द्रौपदी का पक्ष उचित लगता है।” युधिष्ठिर मां के पास आकर भावुक स्वर में कहने लगे। जैसे वे फिर से किसी संकट से उबरने की कोशिश कर रहे हों—उन्होंने कहा—

“द्रौपदी युद्ध के कारणों में अपने अपमान को मुख्य मानती है, उसके मन में तीव्र प्रतिहिंसा है। और यह प्रतिहिंसा मानवीय दृष्टि से उचित भी है। केवल आदर्श ही इसका विरोध कर सकता है। द्रौपदी अपना पक्ष ठीक मानती है। कितना अपमान, कितने कष्ट! उनसे क्या मातृश्री आशीष वचन निकलेगा—? जो कुछ भी सहा है वन में द्रौपदी ने उन सबका प्रतिकार केवल यह युद्ध है।”

कुन्ती युधिष्ठिर की ओर देखने लगी और बोली—

“तुम्हारी दृष्टि में भी यह युद्ध उचित है?”

युधिष्ठिर ने आवेश रोककर कहा—

“दृष्टि की बात कहां रही है मां, दूसरे पक्ष ने कभी हमारी दृष्टि को समझा है—महत्व दिया है? हमारी सरलता, शक्तिहीनता समझी गई, और हमारे साथ छल किए गए।”

“लेकिन इस युद्ध में वत्स, सब कुछ नष्ट हो जायेगा।”

“नाश और निर्माण क्या? एक-एक दर्प अब बाण बन जायेगा। एक-एक की शब्द शंख की गूंजों में अभिव्यक्ति पायेगी।....

और कुछ नहीं होगा मां।” युधिष्ठिर खड्ग हो गए!

“महाकाल जिन्हें वीरगति के नाम पर असमय ही समाप्त कर देगा, उनको मिलेगा स्वर्ग....और जो जीतेगा राज्य पा जायेगा।”

“मातृश्री जीत यह बहुत भयानक होगी—शवों पर तैरती! दोनों पक्षों में बंधु-बांधव हैं, कैसी यह जीत मां, कैसी यह हार होगी...? मैं बहुत चिंतित हूं।”

कुन्ती को फिर से युधिष्ठिर में उठे त्यागी का रूप झकझोरने लगा वह बोली—

“फिर वीतरागिता। अब यह सब कुछ नहीं।”

“नहीं! नहीं! मातृश्री इधर से आ रहा था आपके कक्ष में प्रकाश देख आ गया। जाता हूं मातृश्री! एक दिन शेष है। मुझको आशीष दो।”

“अपने व्रतों के पुण्यों का फल सब कुछ मैं तुम पर न्यौछावर करती हूं। युद्ध में विजय हो।”

कुन्ती ने बड़बड़ाहट के साथ युधिष्ठिर को विजय का आशीर्वाद दिया और इसी आशीर्वाद के साथ उसने भविष्य के महत्वपूर्ण अंश को काटकर फेंक दिया। आशीर्वाद देते हुए कुन्ती के होंठ कांपे थे, मन चिल्लाया था लेकिन इतना बड़बड़ाहट जो बाहरी सत्य है उसे मैं कैसे झुठला सकती हूं। सूर्य और युधिष्ठिर और द्रौपदी तीनों से ही अलग-अलग बातें करके जैसे उसने अपने सारे कर्म विधान को फिर से याद करते हुए उन्हें एक औचित्य दे दिया था। द्रौपदी से वार्तालाप में यह भी निश्चित हो गया था कि इसमें द्रौपदी भी नियति और दैव को प्रमुख मानती है। कुन्ती और पांडवों को इतना दोषी नहीं मानती।

सूर्य के साथ बातचीत करते हुए उसने भरपूर नैतिक और अनैतिक प्रश्नों को उठाया और यही अनुभव हुआ कि जो जीवन में होता है जिसके होने को हम टाल नहीं सकते, वह सत्य भी होता है और समय ही उसका निर्धारण करता है। सारा का सारा वातावरण असाधारण हो उठा था। कुछ भी तो सामान्य नहीं रहा था।

कर्ण से मिलकर कुन्ती के मन में जो निराशा और आशा की भावना पैदा हुई थी वह अभी तक वैसी ही बनी हुई है। वह यह निर्णय नहीं कर पा रही है कि अर्जुन के साथ प्रतिस्पर्धा में कर्ण कितने उचित हैं और जब त्याग की बात करते हुए युधिष्ठिर कितने उचित रहते, एक व्यक्ति सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार है और एक व्यक्ति अपने सारे जीवन का लक्ष्य केवल एक से युद्ध

करने के लिए बनाये हुए है।

कुन्ती का आकाश कभी बड़ा होता था, कभी छोटा होता था लेकिन उसकी दृष्टि में यह बात समा गई थी कि इस युद्ध में उसे कुछ न कुछ खोना अवश्य है।

और हुआ भी यही। युद्ध प्रारम्भ हो गया। कौरवों की ओर से पता चला कि भीष्म को सेनापति बनाया गया है। पांडवों की ओर से सेना की देख-रेख के लिए भीमसेन को नियुक्त किया गया लेकिन सेनापति बनाया गया धृष्टद्युम्न को। और इसके पीछे हो सकता है द्रुपद की प्रतिज्ञा की भावना भी जुड़ी हुई हो, किन्तु कुन्ती के लिए यह सूचना कम आश्चर्यजनक नहीं थी कि दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा होकर अर्जुन ने युद्ध करने से मना कर दिया है।

पहले दिन के युद्ध की समाप्ति के बाद कुन्ती को सूचना मिली कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि मैं अपने इन बंधु-बांधवों को कैसे मार पाऊंगा ?

कृष्ण ने इसके उत्तर में अर्जुन को समझाते हुए कहा था कि तुम उनको मारने की बात कर रहे हो जो पहले ही मृत्यु को प्राप्त हैं। जो मृत्यु को प्राप्त है उसे कोई नहीं मार सकता, केवल उसकी मृत्यु का बहाना बन सकता है। अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान बोले थे कि ये सब पूर्व जन्म में भी थे किन्तु उसे जानते नहीं और अगले जन्म में भी होंगे लेकिन उसे जानेंगे नहीं, केवल मैं ही पूर्वापद जन्म के विषय में जानता हूँ।

आत्मा और शरीर की सम्बद्धता को बड़ी व्यापकता से समझाते हुए कृष्ण ने कहा था— आत्मा अजर और अमर है इसे कोई नहीं मार सकता।

कृष्ण के कहने का सार था जो मनुष्य इस आत्मा को ठीक तरह से नहीं समझता वही पश्चात्ताप करता है, दुखी होता है।

जब अर्जुन को कृष्ण के कर्म की बात समझ में आने लगी तो उसने योग, भक्ति और सांख्य के विषय में विस्तार से पूछा। इन सब बातों का उत्तर देते हुए कृष्ण ने ईश्वर की विभिन्न विभूतियों का वर्णन किया और इसी बात पर बल दिया कि कर्मयोग से जीवन की सफलता निश्चित है।

तो फिर मैं इस संघर्ष और पुत्रों के वैमनस्य को लेकर इतनी चिंतित क्यों हो रही हूँ। यदि भगवान का कहना ठीक है कि आत्मा अजर और अमर है तो फिर मैं ही किसी के लिए चिंता क्यों करूँ ?

यह युद्ध होना है होकर रहेगा।

अर्जुन और कर्ण में से किसी एक ने रहना है तो नियति के संयोजन से एक ही रहेगा और क्योंकि अर्जुन के साथ कृष्ण हैं इसलिए मुझे कर्ण को ही खोना पड़ेगा, यह बात मैं जानती हूँ, सूर्य जानते हैं और ईश्वर जानता है।

एक-एक दिन युद्ध होता और सांझ के समय जब बलि हुए और बचे हुए सैनिकों और वीरों की बात होती तो कुन्ती का मन बार-बार करता कि युद्धभूमि में जाकर बीच में खड़ा होकर इस युद्ध को रोक दे लेकिन वह कैसे रोक पायेगी ? कुन्ती हो, गांधारी हो, ये लोग युद्ध में पैदा होने

वाली यातना को भोगने के लिए बनी हैं, युद्ध के विषय में निर्णय लेने के लिए नहीं।

भीष्म बहुत भयंकर रूप से युद्ध कर रहे हैं इस सूचना के साथ ही कुन्ती के सामने भीष्म का वह रूप आ गया जब वे उसे ब्याह कर लाये थे। क्या कुन्ती इस अन्तर को समझ सकती है कि पितामह जो इसे अपने राज्य के युवराज की वधु बनाकर लाये थे आज उसी के बेटे के सामने धनुष बाण लेकर खड़ा होंगे। और पिछले पांच दिन के युद्ध से उसके कष्ट का कारण केवल यही रहा है कि पांडवों के सामने अधिकांश रूप से कौरवों की पराजय हो रही है तो वे वास्तविकता को क्यों नहीं समझ पाते।

कुन्ती को पता चलता है कि भीष्म और द्रोण कोई भी युद्ध के पक्ष में नहीं था और अब भी हर शाम वे युद्ध रोकने का प्रयास करते हैं लेकिन एक व्यक्ति ऐसा है जो धीरे-धीरे दुर्योधन के सामने प्रभावशाली बनता जा रहा है। एक छल से और एक बल से। छल से प्रभावशाली बन रहा है शकुनि और बल से उनका अपना पुत्र कर्ण। वह कौन-सी माया है जिसके कारण यह जानते हुए भी कि पांडवों के सामने वे हारेंगे युद्ध बन्द क्यों नहीं हो रहा। कुन्ती सोचती है और केवल सोचती है कर्म का कोई भी सूत्र पुत्र अब उनके हाथ में नहीं है।

वह कुन्ती जिसने वन में रहकर अपने पुत्रों का हित साधन किया, वह कुन्ती जिसने स्त्री के प्रसंग में भी अपने पुत्रों को एक बनाये रखा। अब इस परिवार को एक नहीं बना सकती।

आठवें दिन के युद्ध की सूचना से कुन्ती का मन दहल गया और वह बाद में पैदा होने वाली किसी भी आशंका के लिए तैयार हो गई। वह रोज-रोज सूचना प्राप्त करती है कि आज प्रमुख राजघराने के व्यक्तियों में से कौन-कौन मारा गया। लगता है जैसे सारा संसार इस रणभूमि में आकर अपने को होम कर देगा।

किन्तु आज का समाचार मन को और भी व्यथित कर देने वाला है। सुना है भीष्म बहुत भयंकर युद्ध करेंगे। भीष्म के भयंकर रूप से युद्ध करने का अर्थ कुन्ती जानती है। वह जानती है कि यदि भीष्म चाहें तो वह इन्द्र का भी सामना कर सकते हैं। भीष्म में भी वह दिव्य अंश है जिसके होते उनका अहित नहीं हो सकता और जब कुन्ती को यह सूचना मिली कि वास्तव में भीष्म ने भयंकर युद्ध किया और अर्जुन इतनी बुरी तरह से उनके बाणों के वृत्त में घिर गया कि कृष्ण को रथ से उतरकर रथ के पहिए को चक्र की तरह से उठाना पड़ा।

भीष्म ने अपने शस्त्र रख दिए और हाथ जोड़कर खड़ा हो गए—“मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ वासुदेव, आपने अपने भक्त की लाज रख ली।”

“इसका क्या अर्थ हुआ पितामह?”

“मैंने प्रतिज्ञा की थी कि या तो मैं आज आपको अस्त्र उठाने पर विवश कर दूंगा या अर्जुन को मार गिराऊंगा। किन्तु...”

“आप अर्जुन को नहीं मार सकते पितामह। कोई भी पितामह अपने बच्चे को नहीं मार सकता।”

“इसीलिए तो आपने अस्त्र उठा लिया।”

अब कुन्ती क्या करे? अर्जुन की रक्षा के लिए कृष्ण को शस्त्र उठाना पड़ा और फिर शिखंडी को आगे रखकर अर्जुन के द्वारा भीष्म ने पराजय स्वीकार की। भीष्म शरशैया पर लेट गये। सिर को ऊंचा करने के लिए भी अर्जुन को ही तीन बाण मारने पड़े और पानी पिलाने के लिए भी अर्जुन का बाण काम आया। यह कैसा स्नेह और कैसी शत्रुता है। न शत्रुता ठीक तरह से परिभाषित होती है और न मित्रता।

कुन्ती के लिए यह सूचना और भी व्याकुल कर देने वाली थी कि आचार्य द्रोण के सेनापतित्व में कर्ण भी युद्ध के लिए तैयार हो गये हैं। तो अब कर्ण युद्ध करेगा? अर्थात् द्रोण और कर्ण मिलकर पांडवों पर आक्रमण करेंगे। कुछ न कुछ ऐसी अनहोनी तो होगी ही जिससे जो कुछ भी सामने आयेगा वह कष्टकारक ही होगा। कुन्ती युद्ध की सूचनाओं के विषय में अधिक ध्यान देने लगी है। द्रोण के सेनापतित्व में पहले दिन का युद्ध समाप्त होने पर कुन्ती ने पूछा था कि कौन-कौन युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ है?”

और वह दिन कुन्ती के लिए बहुत ही भारी बनकर आया जब सात महारथियों ने मिलकर अर्जुन की अनुपस्थिति में अभिमन्यु का वध कर दिया था। कुन्ती समझ नहीं पाई थी कि युद्ध में क्या मानव व्यवहार और मूल्य इतने नष्ट हो जायेंगे कि निहत्थे पर वार होगा।

सुभद्रा का आर्तनाद कुन्ती की समझ में नहीं आ रहा था कि वह इसे कैसे झेले। उत्तरा अलग बिलख रही थी। आज कुन्ती को लगा कि अपने पुत्रों की मृत्यु की सूचना पर गांधारी का क्या हाल होता होगा? परिवार का यह युद्ध हम नारियों को रोने के अतिरिक्त और क्या दे सकता है?

कुन्ती का मन हुआ जाकर देखे गांधारी को लेकिन अभी तो सुभद्रा सामने है और आप प्राणपति कहती हुई उत्तरा बार-बार अपनी सास और बड़ी सास के पैरों में गिर जाती है।

जब सवेरे अर्जुन को दूसरी ओर से युद्ध का निमंत्रण मिला था तभी ऐसा लगने लगा था कि कुछ अनिष्ट होगा लेकिन कृष्ण हैं कि किसी बात को अनिष्ट मानते ही नहीं। जो है और जो हो रहा है वह होना ही है। इसलिए वह किसी एक के लिए भ्रामक रूप में अनिष्ट है और दूसरे के लिए उससे अधिक भ्रामक रूप में सुख देने वाला।

कुन्ती अब तक के युद्ध में पहली बार बहुत भीतर तक कांपी थी क्योंकि अभिमन्यु के वध के बाद घटती हुई सेनाओं की संख्या और भीम के द्वारा मारे गये गांधारी पुत्रों की गिनती उसको किस दिशा तक ले जायेगी।

अभिमन्यु का शव सामने था। अर्जुन सहित सभी लोग शोकाकुल थे। और उत्तरा का विलाप तो चरमसीमा पर पहुंच रहा था। फिर भी कुन्ती ने सबको धैर्य बंधाया और दार्शनिक स्वर में जन्म और मृत्यु की अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुए सबको शांत किया।

भगवान कृष्ण को लग रहा था कि उनकी बुआ वन में तप कर कंचन बन गयी थी और अब युद्ध से तप कर दृढ़ता से सारी सत्यता को समझने की शक्ति प्राप्त कर चुकी है।

कुन्ती ने बड़-भारी मन से सब लोगों को अपने-अपने कक्ष से विदा किया। शवों का अंतिम संस्कार हुआ। प्रतिदिन जलती हुई चिताओं से जो अग्नि निकलती थी आज उस आग का रंग काला दृष्टिगोचर हुआ। पांडव पक्ष के वीरों में आज एक सबसे छोटा बालक युद्ध की बलि वेदी पर चढ़ा।

कृष्ण ने कुन्ती को धैर्य बंधाते हुए उनकी शक्ति की प्रशंसा की तो कुन्ती बोली—“मैं तुम्हारे जीवन दर्शन के विषय में जानती हूँ। मैं तुम्हारा मन भी पहचानती हूँ और तुम यह सब कुछ क्यों कर रहे हो, मैं यह भी जानती हूँ।”

कृष्ण हंस पड़ा और बोले, “जब सब कुछ जानती हो तो फिर किसी बात पर शोक क्यों करती हो?”

“क्या अपना मनुष्य का स्वभाव छोड़ दूँ। किसी अनिष्ट पर शोक करना और किसी अच्छे पर प्रसन्न होना यह तो मनुष्य का स्वभाव है। कुन्ती के इस तर्क को कृष्ण भी नहीं काट पाये और उन्होंने चलते-चलते केवल इतना कहा—“बुआ सब कुछ भाग्य के हाथ में है। अब यह युद्ध तब तक नहीं रुकेगा जब तक कि कोई एक पक्ष बिलकुल ही ध्वस्त न हो जाये। युधिष्ठिर को तो तुम फिर से वन में भेज सकती हो लेकिन दुर्योधन के अहं के विषय में क्या करोगी? और मृत्यु या संकट कोई भी हो केवल अपनी ही हठधर्मी से यह गलती से नहीं आता इसमें दूसरे का भी योग होता है।”

पांडव शिविर में शोक और हर्ष दोनों एक समान फैले थे। द्रौपदी प्रसन्न थी और कुन्ती के लिए यह निश्चय करना बहुत कठिन था कि इस दुख की छाया में वह अब कहां तक जायेगी, क्योंकि द्रोण को लेकर अर्जुन के मन में जो एक विशेष भाव था उससे कुन्ती परिचित थी। और वह यह भी जानती थी कि अर्जुन आचार्य द्रोण का वध नहीं कर सकेगा। और इन सब बातों से वह बहुत अधिक चिंतित थी किन्तु युधिष्ठिर का प्रश्न तो बहुत मार्मिक था। किसी के भी कहने से युधिष्ठिर झूठ क्यों बोलने लगे। और यह भी तय था कि जब तक द्रोण के हाथ में शस्त्र हैं तब तक उनका कोई वध नहीं कर सकता। और कुन्ती ने सुना कि युधिष्ठिर ने आधा झूठ बोल दिया। चाहे झूठ बोला हो या न बोला हो लेकिन अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए शब्दों को इधर-उधर करके उच्चारित करना भी झूठ से कम नहीं है।

यह सुनकर कुन्ती को बहुत आश्चर्य हुआ कि युधिष्ठिर के झूठ पर विश्वास करके जब आचार्य निहत्ये होकर रणभूमि में बैठ गये तो धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया। यह जघन्य कार्य किसी के लिए विजय का कारण बना और किसी पक्ष के लिए पराजय का लेकिन इससे उठे हुए अनेक नैतिकता के प्रश्न कुन्ती की आंखों के सामने तैर गये। और वह यह अनुभव कर पाई अब इस युद्ध के समय कुछ भी धर्म और अधर्म नहीं रहा है। पहले जितने बल से युधिष्ठिर के त्याग और तप को दुर्योधन की अधर्म भावना ने लील लेना चाहा अब वे सारे कार्य दोनों ओर से हो रहे हैं। एक मां क्या कर सकती है। न वह सवेरे-सवेरे सैनिक वेश में सजे अपने पुत्र को रोक सकती है और न प्राणों को खोकर जो वीर वीरगति पा चुका है उसकी सांस वापिस ला सकती है।

ये ग्रह और नक्षत्र ही आगे युद्ध कर रहे हैं। रणभूमि में युद्ध करने वाले सैनिक केवल बहाना हैं। युद्ध हो रहा है प्रकृति की दो शक्तियों में और यह नहीं मालूम कि कौन-सी शक्ति जीतेगी लेकिन राजमहल की गंध में बहुत परिवर्तन हो रहा है। कृष्ण किसको बुलाने भेज रहे हैं?

कृष्ण भीम के पुत्र घटोत्कच को बुलाने का प्रस्ताव रख रहे हैं। क्यों बुलाया जा रहा है भीम का वह पुत्र जिस पर हमारा कोई अधिकार नहीं? हमने क्या दिया है उस पुत्र को? हम किस अधिकार से उसे बुलाना चाहते हैं।

आचार्य द्रोण के सेनापतित्व में अभिमन्यु का वध हो चुका है तो क्या घटोत्कच भी इसी रास्ते जायेगा किन्तु नहीं, घटोत्कच तो माया सम्पन्न है। उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। और उसके बुलाने का कोई विशेष अर्थ तो होगा ही।

कुन्ती जब-जब कर्ण और अपने अन्य पुत्रों के युद्ध के विषय में सुनती और जब-जब उसे पता चलता कि कर्ण पराजित हुआ है तब भी और जब उसे पता चलता कि भीम या नकुल की पराजय हुई तब भी उसकी स्थिति एक-सी रहती। वह केवल अपने को उपालम्ब देने के अतिरिक्त और कुछ भी न कर पाती। जब से कर्ण ने युद्ध में भाग लेना शुरू किया है तब से वह दिन-प्रतिदिन क्षण-क्षण व्याकुल रहने लगी है। भीम और कर्ण का युद्ध हुआ और कर्ण की पराजय, कुन्ती प्रसन्न हो या दुख अभिव्यक्त करे। क्योंकि भीम अस्त्र-शस्त्र से तो कर्ण को पराजित नहीं कर सकता था। वह नीचे उतरा और कर्ण के रथ को उठाकर पटक दिया। ऐसी स्थिति में कर्ण को भागने के अतिरिक्त और कोई अवसर नहीं था।

कुन्ती ने यह भी सुना कि दुर्योधन ने द्रोण को भला-बुरा कहा और द्रोण ने कुछ न कुछ अनहोनी करने की प्रतिज्ञा की। शायद इसलिए घटोत्कच को बुलाया गया है।

घटोत्कच युद्ध में भाग ले रहा है और सबसे पहला युद्ध उसका अश्वत्थामा के साथ होता है। पिता और पुत्र यानी भीम और घटोत्कच मिलकर अश्वत्थामा और दुर्योधन को भगा देते हैं।

घटोत्कच बहुत भयंकरता से लड़ रहा है। वह कर्ण पर प्रहार पर प्रहार किए जाता है। उसकी शक्ति से कौरव सेना में भगदड़ मची हुई है। दुर्योधन बार-बार कर्ण को उकसा रहा है कि वह किसी तरह से घटोत्कच का वध करे, किन्तु कर्ण अभी अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहते। कर्ण समझता है कि यदि उसने घटोत्कच के ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग कर दिया तो वह आगे युद्ध में कुछ नहीं कर पायेगा।

संध्या हो रही है और कुन्ती अनुमान लगाती है कि सेनाओं के लौटने का समय हो गया है, लेकिन यह क्या! सामने से कृष्ण और अर्जुन लौटते हुए प्रसन्न हो रहे हैं और शेष पांडव सेना बहुत दुखी-दुखी सी लौट रही है।

कुन्ती के मन में आशंका जागी कि हो न हो घटोत्कच का वध हो गया है और अब दूत उनके सामने खड़ा है और बता रहा है कि किस प्रकार भीम के इस पुत्र ने कौरव सेना में भगदड़ मचा दी थी। दुर्योधन के बार-बार कहने पर भी सेना नहीं रुक रही थी और तब उसने कर्ण से कहा था कि इस मायावी राक्षस से कौरव सेना को छुटकारा दिलाओ। कर्ण बहुत तीव्र गति से

प्रहार पर प्रहार कर रहा था किन्तु ऐसा लगता था जैसे भीम के इस बेटे के शरीर पर वे फूल से लग रहे हों। और एक बार उसने चिल्लाकर कहा—“और फेंको अपने अस्त्र और फेंको।”

जब अकस्मात् दुर्योधन कर्ण के समीप आया और आदेश के स्वर में बोला—कि घटोत्कच का वध करो। अगर आज इसका वध नहीं हुआ तो कल कौन-सी सेना लेकर लड़ेंगे और फिर—

यह सुनते ही कुन्ती कांप गई—दूत कह रहा था कि दुर्योधन का आदेश पाकर कर्ण ने इन्द्र की दी हुई शक्ति को हाथ में लिया और रुक गया जैसे उसका मन कह रहा हो कर्ण, रुक जाओ। इस साधारण मायावी राक्षस के लिए इन्द्र की शक्ति को छोड़ना उचित नहीं है।

कर्ण के हाथ बार-बार रुके और इसी बीच दुर्योधन ने अपना आदेश दोहराया। कर्ण के हाथ में अब कुछ नहीं रहा था किन्तु शस्त्र फेंकने से पहले उसने यह जरूर कहा कि मेरे इस अस्त्र का प्रहार व्यर्थ नहीं जायेगा। इसे अर्जुन भी नहीं काट सकता, किन्तु हे आर्य सुयोधन! तुम्हारी आज्ञा से अपने जीवन और कौरवों के विजय की सारी आशा नष्ट करता हूं।

कर्ण ने शक्ति अपने हाथ में ली और जैसे कह रहा हो दिशाएं कांपो, अट्टहास करो। पर्वत अपने स्थान से हिल जाओ और जो भी घटोत्कच की रक्षा के लिए सामने आये वह नष्ट हो जाये। मैं इस एकाग्नि शक्ति से घटोत्कच पर प्रहार करता हूं।

घटोत्कच धरती पर आ गिरा, घटोत्कच अब नहीं रहा और पांडव सेना में दुख व्याप गया और कृष्ण के मुखमंडल पर एक व्यंग्यपूर्ण हंसी दौड़ गई। इस हंसी का रहस्य उस समय अर्जुन को भी पता नहीं चल पाया।

कुन्ती सामने से मुस्कराते आते हुए कृष्ण और अर्जुन को देख रही है। वे दोनों उसे नमस्कार करके चले जाते हैं और अत्यंत भव्य और स्पंदित चाल से द्रौपदी कुन्ती के पास आकर उनकी चरणवंदना करती है।

“तुम्हारे मुख पर बहुत प्रसन्नता खिल रही है। क्या कोई शुभ समाचार लाई हो? युद्ध रुकवाने का कोई उपाय निकाला है क्या? युद्ध यदि आज भी रुक जाए तो कितना अच्छा हो।”

“माताश्री! आप कौन से स्वप्न में खोई हैं। विजय और पराजय के इतने निकट आकर क्या युद्ध रुकता है कभी। विजेता सोचता है कि वह युद्ध क्यों रोके और पराजित इस आशा में कि कोई भी चीज उसके अनुकूल हो सकती है। अपनी शेष बची हुई शक्ति भी दांव पर लगा देता है। जैसे आर्य युधिष्ठिर ने सब कुछ लौटाने की कामना लेकर द्रौपदी को दांव पर लगा दिया था। अब युद्ध को कौन रोकेगा। अब तो यह युद्ध तभी रुकेगा जब अंतिम समय अंतिम रूप से दुर्योधन का सर धड़ से अलग होकर भूमि पर लोटेगा।”

घटोत्कच के वध से जो शांति और प्रसन्नता द्रौपदी को मिली थी वह उसने पूरी की पूरी व्यर्थ कर दी और उसके चेहरे पर हंसी देखकर कुन्ती ने पूछा—“बहुत प्रसन्न हो तुम, इतनी भयानक चीत्कारों के बीच में भी यह हंसी।”

द्रौपदी ने हंसी को रोक मुस्कराहट में बदला और कहा, “हां माता, आज की मेरी हंसी मेरी

वास्तविक हंसी है। क्योंकि आज प्राण प्रिय पार्थ के ऊपर जो संकट छाया हुआ था वह समाप्त हो गया।”

एक क्षण रुक कर द्रौपदी ने फिर कहा—“सोलह दिनों के इस भीषण संग्राम में मैं देख रही थी कि विजय का सिंहासन पांडवों के पक्ष में बढ़ रहा है किन्तु फिर भी कुछ आशंका रहती थी।”

“आपको याद है माताश्री कि आर्य इन्द्र ने जाने क्यों कर्ण को एक शक्ति दी थी जिससे वह किसी एक व्यक्ति को मार सकता था। आज उसने वह शक्ति घटोत्कच के ऊपर चला दी। उसका वध हो गया और पार्थ अब पूरी तरह सुरक्षित हैं माताश्री।”

कुन्ती के शोक में द्रौपदी की हंसी ने पीड़ा का प्रवेश करा दिया और वह कहने लगी कि क्या इसीलिए घटोत्कच को बुलाया गया था।

अभिमन्यु और घटोत्कच, अन्तर इतना ही तो है कि एक ने दादा की उंगली पकड़ कर विकास किया और दूसरा माया के कारण अपने आप में सम्पन्न रहा। कुन्ती ने बहुत कष्ट के साथ द्रौपदी की ओर देखा। वह अब भी मुस्करा रही थी। उसे देखकर कुन्ती बोली—“वह हमारा पुत्र था। पांडव सेना निराश लौटी है तुम्हें भी प्रसन्नता नहीं मनानी चाहिए।”

द्रौपदी ने हल्की-सी गंभीरता से कहा, “माताश्री, मैं प्रसन्न हूँ किन्तु आप दुखी हैं और इन दोनों का कारण एक ही है—घटोत्कच का वध। लेकिन यह संयोग नहीं इसलिए पिछले दिनों के संग्राम में मुझे बार-बार यह लगता रहा है कि कर्ण कहीं आर्य अर्जुन की अकाल मृत्यु के रूप में सामने न आ जाये।”

“तुम कर्ण को अर्जुन की अकाल मृत्यु समझती रही हो। लेकिन कर्ण किस तरह से उसकी अकाल मृत्यु हो सकता है। पार्थ भी तो कर्ण की अकाल मृत्यु बन सकता है और जितने भी ये सैनिक मरे हैं क्या सबकी स्वाभाविक मृत्यु हुई है?”

द्रौपदी ने कुन्ती के चरणों की ओर देखते हुए कहा, “मैं जानती हूँ माताश्री कुछ रहस्यमय बात कर्ण के सम्बन्ध में आपके मन में है।”

कुन्ती बहुत गम्भीर हो गई और उसने लगभग क्रोधित होते हुए कहा—“द्रौपदी चुप रहो, तुम्हारी यह प्रसन्नता किसी के भी सामने प्रकट नहीं होनी चाहिए।”

द्रौपदी कुन्ती को नमस्कार करके अपने कक्ष में चली गई और इधर कुन्ती फिर से आकाश की ओर देखकर अपनी भाग्यलिपी के सभी आलेख पढ़ने लगी। कुन्ती को लग रहा था कि इस राजभवन और शिविर में सभी पांडव विश्राम कर रहे हैं लेकिन उसका एक पुत्र इस समय भी चिंतित होगा। हो सकता है वह केवल अंधकार में खड़ा हो और प्रकाश उसके लिए नग्न होने के समान हो।

कुन्ती ने अपने आपको संभाला क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि कृष्ण और अर्जुन की प्रसन्नता के बीच उसकी कोई इतनी अप्रसन्नता देख ले।

दूत रणभूमि से इतनी जल्दी समाचार देने के लिए महल में आयेगा, यह कुन्ती को आशा नहीं

थी किन्तु समाचार ही ऐसा था क्या किया जाता अब कौरवों के पास और चारा ही क्या बचा था ? द्रोण के वध के बाद कर्ण के अतिरिक्त अब था कौन, जिसे वह सेनापति बनाता। कर्ण सेनापति बन गये। कुन्ती प्रसन्न हो या दुखी कुछ समझ में नहीं आ रहा।

कर्ण सेनापति बन गये और उन्होंने भयंकर युद्ध किया। लेकिन पहले दिन के युद्ध में केवल इसके कि सामान्य रूप से सैनिक या दुर्योधन के कुछ भाई मृत्यु को प्राप्त हुए और कुछ विशेष नहीं हुआ। किन्तु इस दूत के साथ यह दूसरा कौन चला आ रहा है। पता करने पर पता चला कि शल्य ने अपना एक दूत भेजकर कुन्ती से इस बात की क्षमायाचना की है कि उन्होंने कर्ण की सारथी बनना स्वीकार कर लिया है और साथ में उन्होंने यह भी बताया कि वे अर्जुन का हित करते रहेंगे। सारथी बनते-बनते भी कर्ण को हतप्रभ करते रहेंगे। दूत ने सारी बातें कुन्ती से कहीं और कुन्ती ने उसे भाग्य की रेखा समझते हुए स्वीकार कर लिया।

अब अपने अजिर में या महल के किसी भी कक्ष में समाचार आने तक कुन्ती कुछ नहीं कर सकती।

दूत आ गया है और कुन्ती पूछती है—युद्ध का समाचार क्या है ? दूत कहता है घमासान युद्ध हो रहा है। दोनों ओर से कभी कर्ण भारी पड़ते हैं कभी अर्जुन। दोनों को युद्ध करते हुए देखकर ऐसा लगता है जैसे सूर्य और इन्द्र एक दूसरे से युद्ध कर रहे हों।

दूत ने यह उपमान कहाँ से लिया। इसमें इतनी बुद्धि कैसे हुई कि कर्ण की तुलना सूर्य से और अर्जुन की इन्द्र से करे।

कुन्ती क्या चाहती है बस ऐसे ही युद्ध होता रहे और निर्णय न हो। नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। निर्णय तो होगा ही। दूत के बताने पर कुन्ती को पता चला कि एक बार तो कर्ण ने अर्जुन का मुकुट भी नीचे गिरा दिया था और तब पूछने पर दूत ने खाण्डव वन की सारी कथा सुना दी थी।

किन्तु सहसा युद्ध का रंग बदल गया और युद्ध अर्जुन के पक्ष में आ गया। यह बड़ी विचित्र बात हुई कि दूत बता रहा था कि अर्जुन का केवल किरीट ही नहीं गिरा उसके धनुष पर भी चोट लगी लेकिन अंत में पराजय कर्ण के ही भाग्य में लिखी थी।

मृत्यु से पहले घटनाएं भी बहुत विचित्र स्थिति में घटती गईं। अश्वसेन सर्प को कर्ण ने स्वीकार नहीं किया और इसके बाद सारे निष्फल अर्जुन के बाण फिर भी अर्जुन संभल गये और कर्ण ने अनुभव किया कि उसके रथ का पहिया धरती में धंसने लगा है वह और कुछ नहीं कर सके, विवश होकर अपने रथ से नीचे उतर गये और पहिया निकालने लगे किन्तु पहिया नहीं निकलना था नहीं निकला। इस बीच अर्जुन ने बाणों का प्रहार करना छोड़ दिया था किन्तु कृष्ण के कहने पर अर्जुन ने फिर से आक्रमण किया और निहत्थे पर वार करते हुए अर्जुन को क्षोभ भी हो रहा था किन्तु अर्जुन क्या करते ! युद्ध तो युद्ध होता है और उसमें चाहे जिस माध्यम से हो विजय लिखी जाती है।

अर्जुन ने अपने बाणों का प्रहार और तेज कर दिया। कर्ण अपने दोनों हाथों से पहिया निकालने में व्यस्त और वक्ष पर पड़ रहे हैं अर्जुन के बाण। कर्ण कुछ कहना चाहते हैं लेकिन कह भी

नहीं पाते।

और कुछ क्षण के बाद आंजलिक बाण से—दूत अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि कुन्ती होश खोकर गिरते-गिरते बची और धम्म से अपने मंच पर बैठ गई।

“कर्ण, बेटे कर्ण, तुमने जो कहा था वही ठीक था और वही तुमने कर भी दिखाया। मैं तुम्हारी चिरअपराधिन मां तुमसे क्षमा मांगती हूँ।”

सारा का सारा राजपरिवार कर्ण के वध पर हर्षोल्लास में डूबा हुआ था और उसके बीच बाहरी हर्ष दिखाते हुए केवल एक स्त्री बची थी जो भीतर से बहुत दुखी थी और वह थी कुन्ती जो किसी को कुछ कह भी नहीं सकती थी कि सहसा द्रौपदी उनके सामने आई और कहने लगी, “माताश्री—वध आर्य भीष्म का भी हुआ था, प्रसन्नता हुई थी, मृत्यु आचार्य द्रोण को भी मिली थी, पिता का प्रण पूरा हुआ इसलिए प्रसन्नता दुगुनी हो गई थी किन्तु आज कर्ण की मृत्यु पर मेरे रक्त के उबाल में एक विचित्र हंसी घुल रही है, विचित्र शांति घुल रही है जैसे धीरे-धीरे शरीर, मन और आत्मा एक साथ संगीतमय हो रहे हों। अच्छा माता चलती हूँ।”

प्रसन्नता से भरी हुई, लौटती हुई द्रौपदी बोली, “पांडव सेना के स्वागत की तैयारी करूँ आज तो आर्य के घावों में विशेष चमक होगी। यह युद्ध मुझे लगता है मैंने आज पहली बार जीता है और यह विजय पार्थ की व्यक्तिगत विजय है।”

द्रौपदी के मन का भाव कुन्ती समझती थी इसलिए उसने कुछ नहीं कहा। कहती भी क्या और कैसे? कुन्ती यह तो कभी नहीं चाहती थी कि अर्जुन को कुछ हो जाये यद्यपि यह भी उसने कभी नहीं चाहा कि कर्ण को कुछ हो। उसने हमेशा यही प्रयास किया कि अर्जुन और कर्ण दोनों को साथ-साथ देख सके लेकिन जब भी देखा आमने-सामने एक-दूसरे पर आक्रमण करते हुए देखा, गले मिलते हुए नहीं।

इतनी बड़बड़ी यातना छिपाये हुए है कुन्ती अपने मन में।

अधिरथ और राधा का क्या हाल हो रहा होगा। उनका वह अपना पुत्र तो नहीं किन्तु पालित पुत्र अवश्य था। कुन्ती को अकेले अधिरथ और राधा की ही चिंता क्यों हुई? इससे पहले युद्ध में अनेक सैनिक मारे गये हैं उनके माता-पिता भी उसी यातना को सह रहे होंगे जो कुन्ती ने अभिमन्यु के संदर्भ में सही और अन्य पुत्रों के संदर्भ में।

बाहर का बहुत कुछ शांत हो गया था लेकिन भीतर अभी तक बहुत कुछ अशांत था। यह तो लगभग निश्चित हो गया था कि जीत पांडवों की होगी किन्तु अभी भी बहुत कुछ शेष रह गया था।

। । ।

रात लगभग-लगभग आधी हो चुकी थी और अपने दूत से कुन्ती ने यह समाचार प्राप्त कर लिया था कि शोकाकुल कौरव सेना अपने शिविरों में सो रही है और अभी कर्ण का शव उनके

घर के बाहर न रखकर अधिरथ के घर के बाहर रख दिया गया था।

कुन्ती ने अपनी विश्वसनीय दासी से रथ तैयार करवाया और कर्ण को देखने के लिए जाने लगी। कुन्ती धीरे-धीरे उठ रही थी, मन बहुत तेज दौड़ रहा था, कदम चुपचाप शांत थे फिर भी चल रहे थे। आंखों में आंसू थे और न किसी प्रकार की जिज्ञासा। बस एक बार अपने उस अपालित पुत्र को देखने की इच्छा थी।

रथ बहुत धीरे-धीरे रणभूमि के बीच से गुजरता हुआ शत्रु कि शिविर की ओर बढ़ रहा था। कुन्ती को इस बात का भय बिलकुल नहीं था कि उनके साथ कुछ अनिष्ट हो सकता है क्योंकि वह जानती थी कि युद्ध के बाद आपस में मिलने की परम्परा बहुत पहले से ही है। उसकी आंखों के सामने वह दृश्य भी घूम गया जब भीष्म के पतन के बाद उनसे मिलने के लिए कौरव पांडव एक साथ गये थे।

घोड़ बहुत दबे पांव चले जा रहे थे। विश्वसनीय सारथी और उस सखी के अतिरिक्त और कोई साथ नहीं था। धीरे-धीरे रथ अधिरथ के पड़ोस के पास पहुंचा और कुन्ती ने देखा कि एक स्त्री निश्चित ही कर्ण के शव के पास बैठी रो रही थी।

कुन्ती ने रथ थोड़ी दूर पर ही रोक दिया और फिर धीरे-धीरे चल कर वहां आ गई। जैसे ही वह शव के पास पहुंची उस स्त्री ने अपनी आंखों से आंसू पोंछ जिज्ञासा का भाव लेकर कुन्ती की ओर देखा।

“तुम मुझे नहीं पहचानतीं”—कुन्ती ने कहा।

“मैंने आपको कहीं देखा ही नहीं तो मैं कहां से पहचानूंगी।” राधा ने उत्तर दिया—“आप बताएं आप कौन हैं?”

“मैं कुन्ती हूं।”

यह नाम सुनकर राधा सकपका गई और हकलाती हुई-सी बोली—“आप...आप कुन्ती हैं, पांडवों की माता कुन्ती।”

“हां, मैं कुन्ती हूं पांडवों की माता कुन्ती।”

“मेरा बेटा इस समय मृत्यु को प्राप्त हुए पड़ा है मैं आपका कोई भी स्वागत आतिथ्य नहीं कर सकती।”

“यह समय स्वागत और आतिथ्य का नहीं है। मैं शोक प्रकट करने आई हूं। मुझे कर्ण के मरने का बहुत दुख है।”

“आप तो राजमाता हैं आपको तो प्रत्येक सैनिक के मरने का दुख होता होगा, किन्तु मेरा तो यह एक मात्र बेटा था।”

कुन्ती ने अनुभव किया कि धीरे-धीरे एक रथ और चला आ रहा है और उसमें से जो स्त्री उतर रही है वह और कोई नहीं, उनकी पुत्रवधू द्रौपदी है। क्यों आई है द्रौपदी यहां? कुन्ती को समझते

देर नहीं लगी फिर भी उसने पूछा कि तुम यहां किसलिए आई हो।

द्रौपदी को भी कुन्ती को वहां देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ था। जैसे उसके मन में उठता हुआ एक-एक प्रश्न अपने अर्थ खोल रहा हो। स्वयंवर में केवल दो ही व्यक्ति धनुष पर डोर चढ़ा सके थे एक तो इनका अपना पार्थ जो कुन्ती का पुत्र है और दूसरा कर्ण। तो क्या—इसके आगे द्रौपदी नहीं सोच पाई। उसने माता से कहा, “आप यहां आई हैं कारण मैं नहीं जानती। मैं तो केवल यह देखने आई हूं कि क्या वास्तव में कर्ण मर चुका है?”

“कर्ण तो मर ही चुका है। इस पर और निश्चय करने आई थी।” कुन्ती के शब्द पूरी तरह से मुख से निकले भी नहीं थे कि पार्श्व से घायल अवस्था में एक सैनिक आता है और उसे देखकर कुन्ती ने अकस्मात् कहा कि तुम यहां आधी रात को घायलों के बीच।”

अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र संभाल कर सैनिक बोला, “मैं अकेला कहां हूं राजमाता! आप यहां पर हैं राजरानी भी यहीं हैं और मेरे स्वामी का यह पार्थिव शरीर यहीं पड़ा हुआ है। मैं इन्हें और माता राधा को छोड़कर कहां जा सकता हूं किन्तु अब मुझे छोटा-सा कर्तव्य निभाना है।”

“कर्तव्य, कैसा कर्तव्य?”

“अपने स्वामी का आदेश आप तक पहुंचाना है।” अपने घावों को सहलाता हुआ सैनिक बोला, “अर्जुन के भीषण आक्रमण के बीच जब मेरे स्वामी को अपनी मृत्यु का निश्चय हो गया तो उन्होंने कराहते हुए मुझसे कहा कि मेरी मृत्यु के बाद जब मेरा अस्तित्व शून्य में मिल जाये तो राजमाता कुन्ती से कहना कि मेरी मृत्यु विधाता का एक विचित्र खेल था, बिल्कुल वैसे ही जैसे मेरा जन्म। एक मां ने मुझे पैदा किया एक दूसरी मां ने मुझे पाला। जब से मैंने तोतली वाणी छोड़कर शस्त्र संभाला तब से उसने मुझे बड़ा होते हुए देखा और हे सैनिक राजमाता, कुन्ती से कहना कि मुझे क्षमा करें।”

सैनिक कराहने लगा था जैसे उसे यह कहते हुए बहुत कष्ट हो रहा हो। उसने कहा कि द्रौपदी से भी कहना कि मैंने अपने मन से कभी उससे घृणा नहीं की है। मेरे मन में उसके प्रति कभी भी अपमान नहीं रहा और जितनी बार मैंने उसका अपमान किया उतनी बार ही मैंने अपने को काट करके फेंका।

सैनिक के वचन न ठीक तरह से कुन्ती सुन पा रही थी और न द्रौपदी को सुनाई दे रहे थे लेकिन कर्ण की मृत्यु के बाद उन्हें वह सब कुछ अनुभव हो रहा था जो कभी-कभी पहले जीवन में होता था। और आज वह स्पष्ट होकर सामने आ गया है।

तो यह सच है कि इस युद्ध में प्रत्येक व्यक्ति पराजित होगा और जीतेगा कोई नहीं।

युद्ध में सब कुछ समाप्त हो गया था और अब महल, महल जैसे न रहकर उजड़ हुआ घर रह गए थे। प्रश्न यह था कि धृतराष्ट्र और गांधारी के अंतिम समय में किस तरह व्यवहार किया जाये कि उन्हें बुरा न लगे। कुन्ती चाहती थी कि पांडवों की जीत के हर्ष की भनक भी देवी गांधारी को न पड़े। इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि राज्य पाने के बाद भी तुम धृतराष्ट्र को आगे

रखकर राजकाज करो।

इस तरह पांडव राज्य पाने के बाद विदुर, सञ्जय और युयुत्सु के साथ धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित रहकर उनकी सलाह से पृथ्वी का पालन करने लगे। पन्द्रह वर्षों तक राजा धृतराष्ट्र की सलाह से ही राज्य का पालन करते रहे। वीर पांडव प्रातःकाल उनके चरणों में प्रणाम करने जाते और अपना समय उन्हें देते। धृतराष्ट्र भी स्नेहवश पांडवों का मस्तक सूंघकर उन्हें जब जाने की आज्ञा देते तब जाकर राज्य का कार्यभार संभालते। कुन्ती भी सदा गांधारी को कोई अभाव न महसूस होने देती। और कुन्ती की पुत्रवधुएं समान रूप से कुन्ती एवं गांधारी की समान भाव से सेवा करतीं। राजा युधिष्ठिर राजा के उपभोग में आने योग्य सभी बहुमूल्य पदार्थ और स्वादिष्ट भोजन धृतराष्ट्र की सेवा में समय-समय पर उपस्थित कराते रहते। कुन्ती को इस बात की चिंता सदैव रहती थी कि राज्य के अधिकारी उसके पुत्रों से उनके ज्येष्ठ धृतराष्ट्र को कोई तकलीफ न हो इसलिए वह हमेशा स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित रहती थी।

दुख तो सबको एक समान मिला था। कुन्ती के लिए केवल यही संतोष था कि उसके बेटे राजगद्दी पर बैठ गए लेकिन वे भी जिस यातना का सामना कर रहे हैं वह कम तो नहीं है। एक निर्वेद का भाव उसके मन में बार-बार बैठ जाता है और वह सोचती है कि वह वन में चली जाए। लेकिन वह अपने मुंह से कैसे कहे। अगर अपने पुत्रों को कहती है तो वे रुष्ट होते हैं और व्यर्थ में उसे राज्य वैभव का एक अंश भोगने के लिए कहते हैं।

उसे सबसे अधिक डर भीम से लगता है। भीम जिस तरह से बात-बात पर पहले नाराज हो जाता है। उसी तरह से अब व्यंग्य करते हैं, अट्टहास करते हैं और पूरा ऐश्वर्य भोगते हैं। उसका कारण होगा कि भीम को सबसे अधिक त्रास देने का प्रयास किया गया लेकिन युधिष्ठिर ग्लानि से भरे रहते हैं।

जब-जब वह देखती है द्रौपदी के पुत्रों की वधुओं को, तब-तब जीवन की सारहीनता विराट आकार लेकर खड्की हो जाती है। यह कैसी विजय है जो उसे क्षण-भर भी सहज नहीं होने देती। जब-जब उसके मन में बहुत उद्वेलन होता है वह गांधारी के पास बैठ जाती है। और तभी गांधारी भी अनुभव करती है कि उसने और कुन्ती में समान रूप से खोया है।

कुन्ती अभी-अभी गांधारी के पास जा रही है। और उसके सामने कष्टपूर्ण क्षण चित्र की तरह आ जाते हैं—

दुर्योधन कहीं छिप गया है—

पांडव दुर्योधन को ढूंढ रहे हैं।

दुर्योधन एक तालाब में छिप गया है और युधिष्ठिर वहां भी अपनी सहज सरलता नहीं खोते। वह कहते हैं कि हम पांचों में से किसी एक से युद्ध करके भी यदि तुम जीत जाते हो तो जीत तुम्हारी।

ऐसा क्यों होता है कि वह हर बार बडकी से बडकी बात दांव पर लगा देते हैं। यदि दुर्योधन

नकुल या सहदेव में से किसी एक को युद्ध के लिए चुनता तो क्या होता। वह तो उसकी मति ही ऐसी है लेकिन मति का प्रश्न भी क्या वीर तो दुर्योधन भी था और इसीलिए उसने भीम को ही चुना।

इस सूचना से दोनों पक्षों में व्याकुलता फैल गई थी। उस समय कुन्ती और गांधारी अलग-अलग शिविरों में थीं। कुन्ती का मन हो आया कि भागकर गांधारी जीजी के पास चली जाए और उनसे कहे कि जीजी, हम दोनों चलें। एक बार और दुर्योधन को समझाने की कोशिश करें। सम्भवतः वह मान जाए।

लेकिन कुन्ती अपने ऊपर ही विश्वास नहीं कर पाती कि क्या इस अवस्था में भी दुर्योधन और भीम का संघर्ष टाला जा सकता है। और क्या ये दोनों पक्ष जो विजय और पराजय के कगार पर पहुंच चुके हैं वास्तव में उसकी बात मान जायेंगे।

वह युधिष्ठिर के विषय में तो दृढ़तापूर्वक कह सकती हैं और युधिष्ठिर मानेंगे भी लेकिन गांधारी कभी भी दृढ़तापूर्वक अपने बच्चों के बारे में कभी कुछ क्यों नहीं कह पाई। कुन्ती का मन हुआ कि वह जाकर अपनी जीजी को कम से कम एक बार यह बात अवश्य कहे कि यदि उन्होंने अपनी आंखों पर पट्टी न बांधी होती तो न भीम के द्वारा दुःशासन का खून किया जाता और न अपने ही बड़ों के द्वारा अभिमन्यु मारा जाता। वह द्रौपदी के चीरहरण की बात सोचे या न सोचे किन्तु इतना अवश्य सोचती है कि मेरे पुत्रों पर कष्ट और अपमान की झड़ियां लगी रहें और गांधारी के पुत्रों के पास शक्ति भी रही, ऐश्वर्य भी रहा, बड़-बड़ नायक उनके पक्ष में रहे फिर भी कुन्ती उनकी पराजय का कारण नहीं ढूंढ पाती।

कृष्ण! कृष्ण हैं जो पराजय और विजय के कारण हैं। पांडवों की विजय और कौरवों की पराजय लेकिन कृष्ण को क्या मिला ?

कृष्ण को व्यक्तिगत रूप से कुछ प्राप्त करना ही नहीं था। कितने तटस्थ होकर कृष्ण ने युद्ध में अर्जुन का रथ चलाया और जब भी कुछ किया तो सामने वाले भक्त को देखकर किया।

कृष्ण की याद आते ही कुन्ती को यह अनुमान हुआ कि इस समय जो युद्ध अंतिम क्षणों में है वहां भी तो कृष्ण होंगे।

कुन्ती सोचती रही और केवल सोचती रही। वह न गांधारी के पास जा पाई और न युधिष्ठिर को कुछ कह पाई। आकाश की ओर देखकर अंतिम चरण के युद्ध का परिणाम सुनने के लिए अपने मंच पर बैठ गई।

परिणाम वही हुआ जो अब तक का कालक्रम बता रहा था। गदायुद्ध में भीम ने दुर्योधन को परास्त कर दिया किन्तु यह क्या! लोग कह रहे हैं कि भीम ने नियम के विरुद्ध गदा चलाई और ये कौन है? अरे, यह तो जीजी आ रही हैं। कुन्ती ने देखा। प्रतिहारियों का सहारा लेकर गांधारी उसकी ओर आ रही है। पास आते ही गांधारी ने कहा—

“कुन्ती मैंने तुझसे कभी नहीं कहा लेकिन आज एक बात कहती हूं।”

“कहो जीजी क्या आज्ञा है?”

“जिसके सौ पुत्र मार डाले गये हों वह क्या आज्ञा दे सकती है लेकिन एक उपालम्ब जरूर दूंगी कि किसी और का कहना मानते या न मानते तुम्हारे बेटे तुम्हारा कहना जरूर मानते। मैं वापिस अपने बेटे को कहीं ले जाती किन्तु भीम को तुम्हें कहना चाहिए था कि वे दुर्योधन को न मारे।”

“जीजी मारने और मरने के इस रास्ते में मेरा और तुम्हारा निर्णय माना ही कब गया। हम दोनों तो ऐसे दर्शक रहे हैं इस युद्ध के, जिनकी छाती में हर दृश्य सहस्र-सहस्र छेद कर गया। जीजी, जिस दिन तुम्हारा पहला बेटा मारा गया था दुख तुम्हें और मुझे बराबर हुआ था।”

“जीजी जिस दिन अभिमन्यु मारा गया था दुख तुम्हें और मुझे बराबर हुआ था।”

“बस-बस और कुछ मत कह। मैं जान गई। मैं सब कुछ जान गई। इस समय मेरी मती फिर गई थी जो मैं तुम्हें उपालम्ब देने के लिए चली आई।”

गांधारी और कुन्ती बात कर रही थीं। युधिष्ठिर को यह अनुमान भी नहीं था कि माता और ज्येष्ठ माता इस प्रकार की बात कर रही होंगी। वे तब तक बाहर रुके रहे जब तक गांधारी चली नहीं गई। गांधारी के जाने के बाद युधिष्ठिर ने अनुभव किया कि वे अब मां को इस लूली-लंगड□ी विजय की सूचना दे सकते हैं। वे कह सकते हैं कि दुर्योधन का वध हो गया।

जिस दुर्योधन की ईर्ष्या के कारण तुम्हें तुम्हारे लड□कों को वन-वन भटकना पड□ा वह दुर्योधन वीरगति को प्राप्त हो गया।

युधिष्ठिर कुछ नहीं कह पाये। अनमने मन से माता के चरण छुए और बहुत धीरे से बोले, “हम अंतिम रूप से विजयी हो गये हैं मां।”

यह कहकर युधिष्ठिर बहुत तेजी से वापिस चले गये।

और यह नदी का किनारा हाथ में जल लिये तर्पण करते हुए युधिष्ठिर सारी महाभारत जैसे सामने से रिसती चली गई। कर्ण को श्रद्धांजलि देने के लिए लिया गया अर्घ्य जल अंजुलि से बह गया था और भी न जाने कितना कुछ बह गया था पर उसे किसने देखा है।

♪ ♪ ♪